ॐ श्री गणेशाय नमः

दो नाटक

नारदमोह और रामाश्वमेध



सियावर रामचन्द्र की जय

...म् रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम् ।

...ककक मक्षरम् पुसाम् महापातक नाशनम् ॥

मुद्रक—
अखिल मोहन पन्त, बी० एस० सी०
ए० वी० प्रेस, रानीखेत।

...कत्ता)

... और ताल)

[नाटक के आरम्भ अथवा अन्त में]

अस्थायी— राम नाम मनोऽभिराम
भजन करत सफल काम
प्रभु को प्रथम कर प्रनाम
प्रारम्भित आज काम ॥

अन्तरा—विघन राशि को विराम कल्पतरुन को आराम
सुख को धाम गान साम अष्टयाम दे विश्राम ॥
" तव सन्तान धरहिं ध्यान देहु इनहिं सुमति दान
रहहि आन, ज्ञान, मान रहहु सख्य न ह्वै वाम ॥

श्री

भूमिका

यों तो श्री रामलीला नाटक का प्रचार सारे भारतवर्ष में ही ीं भारत से बाहर अन्य देशों (यथा बर्मा, श्याम, आदि) में भी है * तथापि जिस रूप से (Stage Drama-रंग मंच के नाटक) की भांति अपने कुमाऊँ प्रान्त में इसका प्रचलन हुआ है वह अत्यन्त रोचक, सर्वथा ... करणीय और अतीव भव्य है। प्रसन्नता का विषय यह है कि इधर यह कार्य अपनी लोकप्रियता के कारण और भी अधिक प्रसरित होता जारहा है।

रामलीला नाटक तो मुद्रित और प्रकाशित रूप से ... त्र मिलता है किंतु प्रथम दिवस की लीला "नारद मोह" और अंतिम दिवस का "रामाश्वमेध" या लव कुश काण्ड † जिस प्रकार रानीखेत में होते चले आए हैं; इन दो नाटकों को अन्यत्र की लीला वाले चाहने पर भी पाण्डुलिपि के अभाव में वैसा नहीं कर पाते थे इसी अभाव को मिटाने इन दोनों नाटकों को यह मुद्रित रूप दिया गया है। कहना न

---

* भूमिका लेखक ने बर्मा की मिंगे उपनगरी में कठ-पुतलियों में कैकेयी दशरथ संवाद स्वयं अपनी आंखों से देख रखा है।

† इस नाटक के संकलन में पं० हरिमंगल मिश्र एम. ए. कृत भवभूति विलास—उत्तर रामचरित से भी कृतज्ञता पूर्ण सहायता ली गई है।

प्रकाशक—

होगा कि ये दोनों नाटक स्वतंत्र रूप से भी खेले जा सकते हैं (तब प्रथम नाटक नारदमोह में प्रस्तावना दृश्य न दिखाया जायगा।)

आशा है कि इस प्रयास से साधारणतः कथा या नाटक पढ़ने वालों का तो मनोरंजन होगा ही परन्तु श्री रामलीला प्रबन्धकों के एवं पौराणिक (धार्मिक) नाटक खेलने वालों के मार्ग का एक बड़ा रोड़ा दूर हो जायगा। शुभमस्तु ॥

निवेदक —

—प्रकाशक।

नारद मोह

—पात्र—पात्रियां—

पात्र	पात्रियां
सूत्रधार	नटी,
इन्द्र—स्वर्ग का राजा	
कामदेव—इन्द्र का कर्मचारी	फेयरी डान्स की बालिकायें
रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण } राक्षस	उर्वशी—अप्सरा
	लक्ष्मी—विष्णु पत्नी
नारद—तपस्वी भक्त	
शिव—महाकाल औढरदानी	पार्वती—शिव पत्नी
विष्णु—मायामय भगवान	मोहिनी—मायामयी देवबाला
दूत, इन्द्र के दरबारी देवतागण, शिव के गण, राक्षस, मुनिगण, सभासद आदि	योगिनीगण—सहचरियां आदि

शंका समाधान—

छपने पर शंका हुई कि (१) रावणादि नारद के शाप से पूर्व कैसे आगए ? (२) गीता का श्लोक राम से भी पूर्व विष्णु कैसे कह गए ? समाधान यों है कि नाटक कल्पना है कोई ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं; आर्यों का कालचक्र अत्यन्त विशाल है "बहूनि मे व्यतीता तव जन्मानि चार्जुन" के अनुसार गीता का उपदेश शाश्वत पुराण है। ऐसे ही राक्षस भी कालचक्र में बार बार जन्म लेते रहे। नाटक में समानान्तर साधु और असाधु चरित्र दिखाने तथा विविधता लाने को ही यह सब किया है। यदि कोई "कट्टर" आपत्ति समझें तो रावणादि के दृश्यों को नारदादि वालों के पीछे रख लें।

—प्रकाशक

गाने—

सब गाने सुर ताल में सधे रखे हैं; गानों के सुर ताल प्रकाशक मौखिक भी बता सकेंगे; पर कोई कड़ा नियम किसी एक गाने के सुर ताल का नहीं तथापि:—

पृष्ठ ४ का गाना यमन ३ ताल। पृष्ठ ६ का गाना आरती
" ८, ३८, ८५ के गाने थियट्रिकल काफी
" १५ का गाना केदारा दादरा
" २३, १०३ के गाने पीलू। पृष्ठ ४६ का गाना भैरवी
" २५, २७ के गाने आसावरी कहरुवा
" ३१ का गाना छायानट। पृष्ठ ४५ का गाना लावनी
" ५२, ७२, ७६, १०२ के गाने रसिया सारंग
" ५७ का गाना भीमपलासी। पृष्ठ ८३ का गाना मालकोस
" ६४ " तिलंग दादरा। पृष्ठ १०९ का गाना सारंग

भूल सुधार

हिंदी टाइप में रेफ, अनुस्वार, चन्द्रबिंदु तथा मात्राओं के छपते छपते कुछों के टूट जाने से भी भूलें हो ही जाती हैं। यह भी संभव है कि निम्नांकित में से कतिपय ऐसी भूलें कुछ पुस्तकों में ठीक भी छपी हों तथापि प्रकाशक पाठकों से इन भूलों की क्षमा चाहते हैं और इन्हें निम्न रूप से ठीक कर पढ़ने का आग्रह है:—

पृष्ठ	२	में गाने की	पंक्ति	८	में सग्राम	को	संग्राम
”	४	” नोट	”	८	” नतकियों	”	नर्तकियों
”	७	” ”	”	३,६	” खूटी	”	खूँटी
”	६	” शीर्षक	”	१	” तारद	”	नारद
”	१५	” नीचे से	”	६	” वस्तुए	”	वस्तुएँ
”	१६	” ”	”	२	” स	”	से
”	३५	” ऊपर से	”	१०	” हसी	”	हँसी
”	३८	” नीचे से	”	३	” शंख	”	शंख चक्र
”	३८	के सामने पात्रों में चन्द्रकेतु और होगा					
”	५८	में ऊपर से	पंक्ति	५	में आधक	को	अधिक
”	७४	” नीचे से	”	१	” कसे	”	कैसे
”	६१	” ”	”	५	” समर	”	समर में
”	६१	” ”	”	५	” ज्यादा	”	अधिक
”	१००	” ऊपर से	”	७	” वाल्मीकी	”	वाल्मीकि
”	१०३	” नीचे से	”	५	” कभा	”	कभी
”	१०७	” ”	”	३	” [गट्ठा बना उदास बैठते हैं		

नारद-मोह

अंक १.—दृश्य १

* प्रस्तावना *

[सूत्रधार और नटी]

[ड्रौप उठता है ड्रौप की रस्सी को पकड़े हुए सूत्रधार का प्रवेश मंच के बीच में आकर रस्सी को नेपथ्य की ओर फैंक कर एक बार ऊपर को आँखें कर हाथ जोड़कर फिर आगत जनता की ओर देखकर नमस्कार कर "बोलो श्रीरामचन्द्र की जय" कहकर मंगलाचरण करता है।]

कृपया यस्य देवस्य तरन्ति भवसागरम्
स दीन वत्सलो रामः भवत्वस्मत्सहायकः।
नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गम् सीतासमारोपित वामभागम्
पाणौ महासायक चारु चापम् नमामि रामम् रघुवंश नाथम्।
नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिम् प्रयच्छ रघुपुङ्गव निर्भराम्मे
कामादि दोष रहितम् कुरु मानसञ्च॥

[गाना नेपथ्य में सब पात्र समवेत हो सार देते हैं]

श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम्
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्
कन्दर्प अगणित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरम्
पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुतावरम्
भज दीनबन्धु दिनेश दानव दैत्यवंश निकन्दनम्
रघुनन्द आनन्द कन्द कोशल चन्द दशरथ नन्दनम्
शिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम्
आजानुभुज शर चापधर संग्राम जित खरदूषणम्

नटी [बाईं ओर से प्रवेश आते आते]

कृपा करो हम पर सदा, हम हैं दीन अनाथ
जय जय जय सीतापते, रामचन्द्र रघुनाथ।

श्रीरामचन्द्र-रघुनाथ कितना सुन्दर और प्रिय नाम है! नाथ, यह नाम आपको अत्यन्त प्रिय है न ?

सूत्रधार— प्रिये, प्रिय ही नहीं यह तो अपने फेफड़ों की श्वास और प्रश्वास है।

तुलसी 'रा' के कहत ही, निकसत पाप पहार
फिरि भीतर आवत नहीं, देत मकार किवार।

अब यह तो बताओ प्रिये आज यहाँ पर एकत्र इस रसिक समाज को कौन सा अभिनय दिखाया जाय जिसका इसी नाम से सम्बन्ध हो ?

नटी – प्राणेश, दासी की तुच्छ बुद्धि के अनुसार वाल्मीकि और तुलसी की अमृत वाणी से युक्त श्री "रामलीला नाटक"

एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध
राम नाम मुख से कहें कटें कोटि अपराध

सूत्र० श्री राम कितना पवित्र है, यह नाम! प्राणेश्वरी, अवश्य आज श्री रामलीला प्रारम्भ करें–श्री राम की इस लीला के आरम्भ से पूर्व नारद के मोह का भगवान ने किस प्रकार भंजन किया और उन्हीं नारद का अभिशाप संसार के लिए किस प्रकार वह वरदान हुआ कि चतुर्भुज श्री विष्णु को द्विभुज राम रूप में नरलीला में अवतरित होना पड़ा क्योंकि–

सुखद रोष भी तो हुआ जलद लड़े घनघोर
बरसा, हरषा जगत् सब तरुवर–चातक–मोर

यही सब न दिखाया जाय–इसी से आज 'नारद मोह नाटक' ही क्यों न प्रदर्शित हो।

नटी– अवश्य इस प्रस्ताव की सारी जनता हृदय से स्वागत कर रही है तथास्तु, प्रियतम अब विलम्ब न कीजिए उपस्थित जन उत्सुक हैं बस एक मनोहर गीत सुनाइए मैं जाकर सब पात्रों को प्रस्तुत करती हूँ।

सूत्रधार – [गाना]

रघुवर तेरो ही दास कहाऊँ ॥
तेरो नाम जपूं निशिवासर तेरो ही गुन गाऊँ॥
तुम ही मेरे प्राण जीवन धन तुम तजि और न ध्याऊं
तुमरे चरण कमल को मधुकर रत्न हरी कहलाऊं ॥

पर्दा

अंक १.—दृश्य २

स्थान-अमरावती नगर में इन्द्र का राजभवन—जगमगाते सिंहासन पर इन्द्र बैठे हैं। इन्द्र के हाथ में वज्र [Z आकार का] चमचमाता हुआ, गले में मालाएं- सिर पर राजमुकुट तथा अन्य सभी राजसी ठाठ हैं। सभा में राज सभा के वेष में वाद्य यन्त्र वाले मञ्च भूमि पर बैठे हैं। अप्सराओं के वेष में कुछ नर्तकी बालिकाऐं (फेअरी डांस वाली) नाच रही हैं कुछ सभासद भी बैठे हैं जो 'सुन्दर, सुन्दर, अतीव सुन्दर' कहकर कभी कभी अपने रत्नाभूषण नतकियों को उपहार में दे दे रहे हैं तथा कभी कभी स्वयं भी उनके साथ नाच उठते हैं।

फेअरी डान्स (नाच गाना)

फर फर पवन विकम्पित यह पट
झरझर निर्झरिणी से वह तट ॥
चम चम चमके तारे नभ पर नाच, नाच करता शीतल कर
ताल ताल पर नाच नाच कर इनके ऊपर नाचे वह नट ॥

[हांफते हांफते घबड़ाए हुए दूत का प्रवेश]

दूत—सर्वनाश ! सर्वनाश !! [नाचने वालियां एक ओर से नेपथ्य को निकल जाती हैं]

इन्द्र—हैं ! सर्वनाश

दूत--हां, देवराज इन्द्र, सर्वनाश ही नहीं सर्वस्व नाश !

इन्द्र—कहो तो क्या बात है ?

दूत—महामुनि नारद ने हिमालय में आसन जमाया है!
कठिन तपस्या कर अपना सारा शरीर सुखाया है।
पवन पर जी, कर रहे हैं ध्यान वे भगवान का
जगत की चिन्ता न उनको भय नहीं है प्रान का
कांपती सारी धरा आकाश थर थर कर रहा
डर यही बस छिन न जावे राज्य यह श्रीमान का

इन्द्र—हैं! ऐसी कठिन तपस्या! इतनी कठोर साधना!

दूत—हां, यदि मन में इन्द्रासन लेने की इच्छा हुई तो...?

इन्द्र—तो इन्द्र इसके लिए भी प्रस्तुत है। क्या उसकी सेना में बल नहीं? या उसके पास रम्भा, मेनका, उर्वशी आदि अप्सराओं का दल नहीं? जिसके पास कामदेव सा सैनिक है उसे किसी की भी तपस्या की क्या शंका? भूख प्यास जीत लेना सहज है परन्तु कामदेव के बाणों का सहन करना खेल नहीं—

नोट—कामदेव रंगमंच पर इन्द्रासन के किनारे पर पहले से ही छिपा बैठा रहे और तत्काल एक धड़ाके से उत्पन्न होता दीखे तो उत्तम हो क्योंकि यह मनसिज है अर्थात् स्मरण करते ही पैदा होता है। कामदेव नंगा फूलों की कौपीन पहने, फूलों के पांच बाण लिए, फूलों का धनुष धारण किए हुए, गले से लेकर कमर तक अर्द्ध चन्द्र सा पीठ पर पहने हुए, सिर पर भी फूलों की माला माथे के चारों ओर लपेटे रहे।

इन्द्र—कौन ? कामदेव ? तुम यहां अभी अभी उत्पन्न होगये ? मैं तुम्हें स्मरण ही कर रहा था। जाओ उर्वशी अप्सरा को साथ लेकर जाओ और नारद की तपस्या भंग कर आओ।

जा अभी कैलास को तोड़ो तपी के ध्यान को
हिलादो आसन, डिगादो तन मन, मिटादो सारे ज्ञान को

कामदेव—ऐसा ही होगा नाथ, ऐसा ही होगा।

सब हृदय लक्ष्य हैं कामदेव के यह सब ही ने माना है
यह लड्डू मोहन भोग नहीं लोहे के चने चबाना है
यदि आज्ञा हो स्वामी की तो मैं जीतूं तीनों लोकों को
मैं वश कर लाऊँ शिव को भी नारद तो एक खिलौना है।

[कामदेव का प्रस्थान पर्दा बदलता है।]

अंक १—दृश्य ३

[स्थान—हिमालय पर्वत-राक्षसों की तपस्या—
रावण कुम्भकर्ण और विभीषण तप कर रहे हैं। शिवस्तुति-

रावण तलवार लेकर अपना सिर अपने हाथों से काटकर शिवलिंग पर चढाता है शिर दो हो जाते हैं इसी प्रकार दस बार काटने पर दस सिर हो जाते हैं। साथ में गाना चलता रहता है नेपथ्य से सब पात्र साथ में गाते हैं]

[गाना]

ॐ जय शिव ओंकारा हरे जय शिव ओंकारा
भाल में पावक, नेत्र, चन्द्रमा, जटा जूट, सुरसरि धारा।
ॐ जय शिव ओंकारा ॥

बाम अंग में पार्वती, करमें त्रिशूल डमरू धारा,
भस्म विलेपित गौर देह यों रूप बना सबसे न्यारा॥
ॐ हर हर हर महादेव॥

आशुतोष औढर दानी का भजन करें तजि सुत दारा,
वर दै सबको सुखी करैं प्रभु दुःख हरैं सारा॥
ॐ हर हर हर महादेव ॐ जय शिव ओंकारा॥

नोट—इस दृश्य को बनाने को नौ चेहरे और एक पूरा गले से ऊपरका मस्तक एक ही प्रकारके होंगे रावणको सिरसे लबादे से ढक दिया जायगा और काले रंग खूटी दार लकड़ी उसके सिर के ऊपर जमा दी जावेगी रावण हाथों से तलवार खींच कर बार बार मस्तक को शिवलिंग पर चढाता जायगा रावण के पीछे बैठा हुआ एक आदमी इन चेहरों को खूटियों में अटकाता चला जायगा और हर बार एक बढ़ाता जायगा लिंग से टकरा कर सिर अंदर को लुड़क जायगा और पीछे का सहायक उठवा कर सजाता रहेगा खूँटी वाली लकड़ी इस प्रकार की होगी :—



प्रकाश बहुत कम कर दिया जायगा

अंक १—दृश्य ४

[नारद सितार करताल लेकर गाते हुए बैठे दिखाई देते हैं परदा खुलने पर गाते हुए मंच पर आगे बढ़ आते हैं और अपने आसन पर बैठ कर गाते हैं:—] विहाग

अवसर बीतो जात प्राणि तेरो अवसर बीतो जात
काल की हेरा फेरी में तेरो अवसर बीतो जात ॥ प्राणि०
बालक पन गयो खेल कूद में यौवन युवती साथ
वृद्ध भए अब कछु न बनत है कांपत थर थर गात ॥ प्राणि०
साठ मिनट को घंटा होत है चौबीस में दिन रात
पल पल छिन छिन में जन्म गंवायो
गई सांध्या आयो प्रात ॥ प्राणि०

[कामदेव का प्रवेश]

काम०—यही है मेरे बाण का लक्ष्य यही है !

[उर्वशी का प्रवेश]

आओ उर्वशी मैं अपने पुष्प-बाण चलाता हूँ। तुम अपने दृष्टि बाण चलाओ।

उर्वशी—आई नाथ ऐसा ही करती हूँ। मैं कहने को अबला हूँ परन्तु मुझसे पाराशर विश्वामित्र आदि सभी तो हारे हैं देखिए मेरे नयनों की मंत्रशक्ति का परिचय आप भी लीजिए—[उर्वशी का गाना और नाच]

तरुणी छबीली सुमुखि रसीली प्रिया रँगीली सुकुमारी—
कर होवें कामिनी के कर में मुख सरोज रस लिया करें
आधे नेत्र खुले हों व्याकुल मन्द मन्द रस पिया करें
गोल अमोल कपोलवती मृग नयनी पिक बयनी प्यारी
साथ नहीं जो ऐसी नारी तो नर देह वृथा धारी—तरुणी०

नारद—कौन ?

उर्वशी—मैं हूँ उर्वशी अप्सरा।

नारद—क्या चाहती हो ?

उर्वशी—केवल तुम्हें और कुछ नहीं—

स्वर्ग के सुख छोड़ क्यों बैठे हो इस सुन सान में
इस भांति से सुध बुध को खो हो आज किसके ध्यान में

नारद—जो अणु तथा परमाणु है दीख भू में स्वर्ग में
आज मैं आसन लगा बैठा हूँ उसके ध्यान में

उर्वशी—क्यों भला इस भांति यौवन को मिटाना चाहते
चार दिन की चांदनी यह लौट कर जाने को है

नारद—दूर हट, मेरी तपस्या में न कोई विघ्न डाल
आज अन्तर्ध्यान प्रभु साकार हो आने को है

उर्वशी—भोले तपस्वी, तुम्हारे आंखें नहीं हैं, आंखों में देखने की शक्ति नहीं है और देख कर ग्रहण करना नहीं जानते देखो, देखो !

यह वसन्त खिला हुआ है आज कैसा रूप ले
कूकती है मस्त कोयल सरस शब्द अनूप ले

नारद—तुम ठीक कहती हो—

प्रति कली प्रति फूल में शृंगार वह ही झलक रहा
पत्ते पत्ते से स्वभाव उदार उसका टपक रहा

उर्वशी—तो क्या इस सुन्दर ऋतु को ऐसे ही बिता दोगे ?
इस यौवन को इस जंगल में पड़े पड़े धूल में मिला

दोगे ? उठो, आओ, मेरे साथ चलो, यह स्वर्ग की अप्सरा तुम्हारी दासी है, तुम्हारे प्रेम की प्यासी है।

नारद—तो क्या तुम उसे धूल में मिलने से बचा लोगी ?

उर्वशी—नहीं ऋषिराज—

जो आया है इस जगती में उसको तो जाना ही होगा।
जो फूल खिलेगा डाली में उसको मुरझाना ही होगा।

नारद—जब तुम उसे नहीं बचा सकतीं तो तुम्हारी बात निस्सार है, केवल कुविचार है।

मुझको न कुछ है भावना भोजन की सुख-विश्राम की
है नहीं चिन्ता भवन की राज की धन धाम की
एक मन है पास मेरे मन में इच्छा एक है
मरते मरते मैं कहूँगा "जय सियावर राम की"

उर्वशी—यदि तुम्हें इसी प्रकार भी मरना है तो क्यों न सुख भोग कर मरते हो ?

है एक दिन मरना ही जब तो, आओ कुछ सुख भोग करो
कुछ तो देखो सुख जीवन का, कुछ दिन जीकर ही न मरो ?

नारद—संसार के सुख के लिये जीऊँ ? नहीं कभी नहीं—

जो जिया जीकर मरा, धिक्कार उसने क्या किया
धन्य मरना है उसी का जो मरा मर कर जिया

उर्वशी—देखो, देखो, मेरे रूप को देखो।

नारद—तेरा रूप झूठा है, एक दिन कुम्हला जायगा, ये हिरन की सी तेरी आंखें एक दिन कौओं का भोजन होंगी,

यह फूल के समान तेरी देह एक दिन चिता में जलेगी। मैं तो इस संसार के स्वामी श्री राम के रूप का भूखा हूँ। उसी रूप में आसक्त हूँ।

उर्वशी—उसका रूप ! यह विचार मात्र है, इस रूप को देखो जो तुम्हारे सामने है, सामने के रूप को छोड़ कर भावना के पीछे न भागो—पास की गंगा छोड़ कर पर्वत पर कुँआँ न खोदो।

नारद—जा, जा, तेरा यह मोहन मंत्र मुझ पर न चलेगा। उसका ध्यान छोड़ दूँ ? उस लक्ष्मीपति भगवान का ध्यान छोड़ दूँ ? और इस मिट्टी के पुतले की पूजा करूँ ?

तू दुःख क्लेश की मूरत है वह आकृति शांति सरोवर है
तू तीन ताप की ज्वाला है वह शीतल करुणा सागर है
तू सब पापों की कर्ता है वह सब पापों को हरता है
तू नरक नारकी नारी है वह स्वर्ग-स्वामि परमेश्वर है

उर्वशी—महाराज, तुम्हारी मति मारी गई है। आंख बन्द कर जो रूप देख रहे हो उसका तो करते हो आदर, और आंख खोल कर जिसे देखते हो उसका अनादर—

नारद—आंख खोल कर जो रूप देख रहा हूँ उससे एक दिन आंखें बन्द हो जायेंगी पर आंख बन्द कर जो रूप देख रहा हूँ उससे एक दिन आंखें खुल जावेंगी।

उर्वशी—हां, अच्छा तुम्हारे भगवान का घर कहां है ?

नारद—तू यह तो बतला वह है कहां नहीं, अपने में से यह काम क्रोध निकाल डाल, वह तुझे अपने में ही दीखने लग जावेगा, उसका घर यही तो है, इसी सुन्दर हिमालय पर्वत पर, देख यह कितना सुन्दर है और इससे भी सुन्दर है मेरा देवता शंकर।

उर्वशी—अ हा हा हा, बड़ा सुन्दर है अंग में कपड़े नहीं, सारे शरीर में राख मली हुई, गले में विष, विषैले सर्प; पीने को भंग, धतूरा; भूतगण साथी, अ हा हा हा बड़ा ही सुन्दर है!

नारद—सावधान! तूने मेरा अनादर किया मैंने सह लिया। अब तू मेरे देवता का अपमान करने लगी—इसे मैं न सह सकूँगा—

दूर हट जा सामने से मत सता अब तू मुझे
क्रोध में आकर कहीं मैं शाप दे दूंगा तुझे

उर्वशी—क्षमा, क्षमा।

नारद—क्षमा चाहती है तो भाग इसी क्षण भाग। जा, इन्द्र से जाकर कह देना नारद इन्द्रासन का भूखा नहीं।

उर्वशी—जो आज्ञा (जाती है)

नारद—हैं? भाग गई? हा हा हा हार गई! कामदेव की कुछ न चली। उर्वशी के सब दांव-पेच रह गए। मैंने संसार का त्याग कर सुख भोग जीता, खाना पीना छोड़ कर मन वश में किया, क्रोध, लोभ, मोह को परास्त किया और आज से सारे संसार को

जीतने वाले कामदेव, हे मनुष्य के पांव के विष भरे कांटे, ईश्वर के मार्ग की उत्कट ठोकर, आज तुझे भी वश में कर लिया। मेरी तपस्या सिद्ध होगई—चलूं, विष्णु को इसकी सूचना दूं।

[नारद का गाते हुए जाना]

(कीर्तन) हरे कृष्ण वासुदेव हरी हर भजो—

ड्राप

पहला अंक समाप्त



अंक २—दृश्य १

[स्थान तपोवन—रावण, कुम्भकर्ण, और विभीषण शिव पूजा रत हैं शिव कीर्तन करते जारहे हैं नेपथ्य से सब पात्र समवेत गान में भाग ले रहे हैं]

जटाटवी गलज्जल प्रवाह पावित स्थले
गलेऽवलंब्य लंबितां भुजंग तुंग मालिकाम्
डमड् डमड् डमड् डम निनाद वड्ड मर्वयं
चकार चण्ड ताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम्।

शिव— [प्रकट होकर (शिव पहले से मंच पर बैठे होंगे पर्वत से बने हुए स्क्रीन पीस (पर्दे के टुकड़े) के पीछे और गाने के अंतिम पद होने पर उठ खड़े होंगे) और फिर बाहर आकर सम्वाद आरम्भ करेंगे]

मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ वर मांगो।

रावण—मैं सारे संसार को जीतने वाला वीर होऊँ, मुझे कोई भी न जीत पावे। देवता मेरे दास हों। लक्ष्मी मेरी दासी हो। सुख मेरी सेवा करे और मृत्यु मेरे वश में हो। पवन मेरे पंखा झले और चन्द्रमा मेरे भवन में नित्य उजाला करे—

सुख भोग सारे जगत के होवें मेरे भंडार में
भीख मांगें इन्द्र आकर नाथ मेरे द्वार में
सुर असुर नर यक्ष किन्नर भीति से मेरी डरें
राज निष्कण्टक करूं मैं अमर हो संसार में

शिव— यद्यपि जो कुछ तुमने मांगा है वह तुम्हारे अपने और विश्व के कल्याण के लिए कुछ श्रेयस्कर तो नहीं है तथापि मैं औढर दानी आशुतोष केवल परीक्षण के हेतु तुम्हें यह सब कुछ तुम्हारे शब्दों के अनुसार देता हूँ। तुम्हारी उत्कट तपस्या से प्रसन्न होकर ही यह ऐसा ही होगा—

(विभीषण से) अब तुम क्या मांगते हो तुम भी मांगो—

विभी०—श्री-राज्य-भोग न चाहता मेरे न वे कुछ काम के
रात हों सुख की न मेरी दिन न हों विश्राम के
चाहता हूँ मैं सदा सेवा करूं भगवान की
भक्ति दो मुझको कि पाऊँ पद कमल श्री राम के

शिव— दनुज पुत्र, तुम्हें यह दैवी सम्पत्ति की लालसा कैसे होगई ? क्यों न स्त्री पुत्र राज्य सुख तुमने चाह लिया।

विभी०—ये नश्वर वस्तुए तो पौरुष से भी मिल सकती हैं इन छोटी सी वस्तुओं को आप से क्या मांगूँ परन्तु हरि भक्ति तो पूर्व जन्म कृत कर्मों से ही प्राप्त हो सकती है अथवा आप ही उसे दे सकते हैं—

वह जान लेता है तुम्हें जिसको कि तुम ही ज्ञान दो,
माया मुझे क्या चाहिए मांगा वही वरदान दो।

शिव— तुमने मूल वस्तु चाह ली है और सब वस्तुएं उसी से प्राप्त हो जावेंगी तुम श्री राम के अनन्य भक्त होओ, मुझे तुम्हें यह वरदान देने में अतीव प्रसन्नता

है, तुम भक्त शिरोमणि होओ, भगवान विष्णु तुम्हारे द्वार पर आकर तुम्हें तिलक लगावें। [आगे बढ़ कर सोते हुए कुम्भकर्ण को देख कर]

[स्वगत] क्या भीषण महाकाय है इसका तो सदा सोते रहना ही अच्छा है देवि सरस्वति! तुम ऐसी ही वाणी इसके मुख से निकलवा दो तो उत्तम हो—

[प्रकट] अब और तुम क्या मांगते हो मांगो—[कुम्भकर्ण खर्राटे भरता है]

रावण—(सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाता है) अरे उठ, उठ, वर मांग—

कुम्भ०—(जम्हाई लेकर ऊँघते हुए) हां हूँ ऊँ ऊँ ऊँ ऊँ

रावण—अरे कह, ना, मैं अमर हो जाऊँ।

कुम्भ०—ऊँ ऽ ऽ ऽ (ऊँघता है)

रावण—अरे सो मत, सो, मत।

कुम्भ०—हां महाराज मैं आनन्द से रात दिन नित्य सोया ही करूं, इस बरस सोऊँ तो अगले बरस जागू।

रावण—दुत् तेरे की, सारा गुड़ गोबर कर दिया।

कुम्भ०—रात दिन सोया करूं बरसों में मुंह धोया करूं
आंख में यदि दुःख हो तो कान से सोया करूं
रात दिन सोना ही मेरा एक केवल काम हो
यदि मुझे रोना पड़े तो नाक से रोया करूं

शिव— तामसी निद्रा तुम्हें रात दिन गोद में लिए रहे
तुम्हारे स्वप्न का संसार तुम्हारे लिए सुखकर हो-
(प्रसन्न होकर) तथास्तु तथास्तु एवमस्तु।

[स्वगत] चलो, अच्छा हुआ, वर तो इसी ने मांगा और
जैसा इसने मांगा वैसा आज तक और किसी ने
न मांगा। वाणी की कृपा हुई।

रावण—हाय रे यह क्या मांग लिया ?

कुम्भ०—चलो, मुँह जो सरस्वती छूट गई वह सब ठीक है।

[पर्दा]

अंक २—दृश्य २

नेपथ्य से नारद का गाना सुनाई देता है—

(कीर्तन) अच्युतं केशवं राम नारायणं,
श्री धरं माधवं रामचन्द्रं भजे।

[दाहनी ओर से महादेव का प्रवेश]

शिव— भक्ति से प्रसन्न जब हो चुका तब राक्षसों को मुह
मांगा वर न दे और करता ही क्या ? फिर यह भी
तो जांचना है कि इस शक्ति को वह अपने और
संसार के हित के लिये कैसे बरतता है ?
इस प्रदर्शन से यदपि यह जांच छोटी सी बनी है
ले परीक्षा देखनी है क्यों कि जगत प्रदर्शनी है।

[बांई ओर से नारद का गाते हुए प्रवेश]

शिव— चलो लो ये नारद इधर आरहे हैं
न जाने मुदित मन किधर जारहे हैं !

नारद—(शिव को देख कर) प्रभु आप हैं—
नारद का नमस्कार ये स्वीकार कीजिए
आशीर्वाद देके भव से पार कीजिए

शिव— तप तेज निज बढ़ता रहे हो ज्ञान से भरपूर मन
वैराग्य की हो वासना न कि गर्व में हो चूर मन
नारद प्रसन्न कैसे चले आरहे हो
ये इठलाते गाते किधर जारहे हो ?

नारद—प्रभु मैं क्षीर सागर को लक्ष्मी पति श्री विष्णु भगवान के दर्शनार्थ जारहा हूँ – और—हां, देवाधिदेव मैंने फिर जीत ही तो लिया।

शिव— हूँ··· ··· ···

नारद—हां, बस जीत ही लिया।

शिव— किसे ?

नानद—किसे ? जिसने विश्वामित्र पर विजय पाई पाराशर को पछाड़ दिया और············और प्रभु उसी कामदेव को मैंने जीत लिया।

शिव— चलो भी कामदेव को जीत लेना हँसी खेल नहीं। फिर यदि जीत भी लिया हो तो नारद, मुझ से तो कह लिया कह लिया कहीं लीलाधर विष्णु से न कह बैठना, इसका फल अच्छा न होगा। यह घटना

अवश्य ही कोई भेद भरी छलना होगी। नारद जी इसका गर्व न करना, गर्व का परिणाम अच्छा नहीं होता।

नारद—क्यों शिव जी, विनय रहित अहंगर्व और आत्मवोध या आत्म सम्मान क्या एक ही बात है? आज जो मैंने अपने में छिपी अपनी ही प्रबल विराट शक्ति को उत्कट परीक्षा में पहचान पाया है वह क्या मेरा गर्व है?

शिव— आत्मवोध अपने मन में ही विचारा जाता है दूसरों से नहीं कहा जाता—

स्वयं द्रष्टा यदि बनो यह पाप मय है गर्व है,
इन्द्र भी यदि हो अहंकारी तो वह भी खर्व है।

नारद सावधान!

[प्रस्थान]

नारद—[अकेले ही] तुम कहने को तो भोले बाबा हो पर हो पुराने घिसे हुए; मैं यह भी समझ चुका कि तुम मेरा नाम नहीं चाहते। मदन को मारने वाले आप ही कहलाओ यही क्या तुम्हारी गुप्त अभिसन्धि नहीं? मैं अभी विष्णु के पास जाता हूँ और तीन लोक चौदह भुवनों में डुग्गी पिटवाता हूँ कि नारद ने कामदेव को जीत लिया।

आचरण से उपदेश हो मन वाक् कर्म हों एक से,
उपकार कर सुविचार रख यों चल सदा सुविवेक से।

हां जीत लिया, जीत लिया इस कामदेव को जीत लिया।

[झपट का प्रस्थान पर्दा]

अंक २— दृश्य ३

स्थान--वन पथ—

रावण—[प्रवेश] जीत लिया—सारे संसार को जीत लिया!

अब बना मैं राजा बहुत बड़ा अब बजी मेरी जय भेरी है
साम्राज्य जगत में फैलेगा लक्ष्मी तो अपनी चेरी है
सब धर्म कर्म का नाश करूँ सारे जग का मैं ईश्वर हूँ
धन रत्न से पूर्ण है कोष मेरा सोने की लंका मेरी है

[प्रस्थान]

बिभी०—[प्रवेश] जीत लिया त्रिलोकी नाथ राम को जीत लिया!

मिट गई रात खुल गई आंख सारा भ्रम चकना चूर हुआ
कैसा वह दृश्य हुआ गोचर माया का भ्रम सब दूर हुआ
सारे जग में सर्वत्र मुझे उस प्रभु के दर्शन मिलते हैं
अपना तो अब श्री रामचन्द्र शृंगार तथा सिंदूर हुआ

[प्रस्थान]

कुम्भ०—[ऊँघते हुए प्रवेश]—

जीत लिया इस जागने को जीत लिया। आग लगे इस जागने के सिर पर—कहीं जोगी जाग रहा

है तो कहीं भोगी जाग रहा है और फिर कहीं रोगी जाग रहा है। रात दिन हाय हाय की पुकार मची है किंतु मैं—मैं न जागूंगा—

यदि जग जाव मेरी आंख तो भी मैं न जागूंगा
यदि लग जाय घर में आग तो भी मैं न जागूंगा
किसी का यदि मरे भी बाप तो भी मैं न जागूंगा
यदि डस जाय मुझको सांप तो भी मैं न जागूंगा

[प्रस्थान]

अंक २— दृश्य ४

स्थान—क्षीर सागर शेष शय्या पर भगवान विष्णु और लक्ष्मी बैठे हैं—

नारद—[गाते हुए प्रवेश] गाना पीलू

नारायण नारायण जप ले (प्राणी) जीवन है दिन रैन
ये भव के पथ कीच से लथ पथ इनमें नहिं है चैन
प्राणी जीवन है०
अर्पित कर प्रभु पद पर सारे सैन नैन और बैन
प्राणी जीवन है०

नारद—प्रणाम प्रभुवर,

[विष्णु के समीप खड़े होकर प्रणाम करते हैं]

विष्णु—कहिए नारद जी क्या समाचार हैं।

नारद—मुझे कुछ ज्ञात नहीं स्वामिन्।

विष्णु—कुछ ज्ञात नहीं ? आप घर घर के नारद और आपको कुछ ज्ञात नहीं ?

नारद—मैं तो इधर दीर्घ काल से हिमालय में तप कर रहा था.

विष्णु—कोई सिद्धि भी पाई ?

नारद—सिद्धि तो नाथ बहुत बड़ी पा ली ।

विष्णु—मैं भी तो सुनूँ वह सिद्धि कैसी प्राप्त हुई ?

नारद—मैंने घोर तप कर कामदेव का मान मर्दन कर डाला प्रभु !

विष्णु—धन्य है नारद जी—किंतु कहीं आपको कुछ धोखा तो नहीं हुआ ?

नारद—धोखा सम्भव नहीं भगवन नारद को भी क्या धोखा सम्भव है ? अच्छा महाराज आज्ञा हो चलूं—

विष्णु—अभी अभी तो आए और अभी कैसे चलने लगे, कुछ ठहरो भी ।

नारद—नहीं चलता हूँ प्रभु—इधर अनेक दिवस से संसार का कोई समाचार ज्ञात नहीं है, कभी फिर अपने को उपस्थित करूंगा । प्रणाम

विष्णु—तो क्या जाओगे ही ?

नारद—हां जाता हूँ प्रभुवर [जाना गाते हुए]

विष्णु—प्रिये, देखा तुमने ? नारद को घमंड होगया है ? देखो मैं एक माया रचता हूँ और नारद के इस अहंकार को दूर करता हूँ ।

लक्ष्मी—किस प्रकार ?

विष्णु—इस प्रकार—[ताली बजाना और माया का उत्पन्न होना]

लक्ष्मी—यह कौन ?

विष्णु—यह माया की मोहिनी है। मोहिनी तुम जाकर नारद का मन वशीभूत कर मेरे पास आओ।

मोहिनी-जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

अंक २—दृश्य ५

स्थान-शिवलोक, महादेव पार्वती और योगिनी तथागण।
योगिनियों और गणों का नाच गाना।

गाना—

सब ही होवेंगे सफल काम
शिव और शिवा का लें जो नाम
श्री शिव को हम करते प्रणाम
श्री शिवा को हम करते प्रणाम
ये भस्म धूल से धूसर हैं
ये अंगराग से सुन्दर हैं
वे चन्द्रभाल और करकपाल
ये रत्नों से नयनाभिराम
श्री शिव को हम करते प्रणाम
श्री शिवा को हम करते प्रणाम

वे नग्न दिगम्बर वेष धरें
ये सब ही दिव्याम्बर पहिरें
वे महाकाल सब ध्वंस करें
ये पालन कर देतीं विराम
सब ही होवेंगे सफल काम
शिव और शिवा का लें जो नाम

शिव— शिवे, इस नारद के सिर भी न जाने कौन खेला कि एक सुपने के पीछे गर्व से बावला हो इतराया। मुझ से कहता था कि कामदेव को जीत लिया; मैं तभी इस छलना को समझ गया और लीलामय की लीला समझ, विष्णु से यह बात न कहने को कह चुका था।

पार्वती—तब क्या हुआ नाथ?

शिव— जो होना था ठीक वही—
वह नटवर डोरी खींच खींच कर पुतला आज नचाते हैं
नारद के ज्ञान की दुर्गत है मोहिनी के पीछे जाते हैं

पार्वती—क्या कहा? मोहिनी के पीछे नारद? तपी, वैरागी और ज्ञानी चौबीसों घंटे हरि कीर्तन में गद्गद नारद—माया में रत!

शिव— हां हां, वही नारायण नारायण वाला नारद—
इस माया ठगिनी से जग में है कौन बचा ठगने से है
वह बाण अचूक करे घायल जी में जाकर लगने से है
बच सकता वह जिसको हरि ही बस अपने हाथ बचा लेते
फटती कोठी बारूद भरी एक चिनगारी दगने से है

पार्वती—सत्य है नाथ, मर्यादा का बांध टूट तो सरलता से ही जाता है पर बँधता है अपना सर्वस्व निछावर करके। इस कौतुक को मैं अवश्य देखूँगी।

शिव— तो आओ, इधर, लो, देखो इस दिव्य दृष्टि से [पार्वती की आंखों पर हाथ फेर कर उसे नेपथ्य की ओर लेजा कर ताली बजाते हैं—धड़ाके से पर्दा फटता है—दोनों छिप जाते हैं]

अंक २— दृश्य ६

स्थान—वन मार्ग—नारद "भजमन नारायण नारायण नारायण" गाते हुए आते हैं और आकर]

किंतु इसमें सन्देह नहीं कि जब से मैं विष्णु के पास से आया हूँ ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने मेरी कोई अमूल्य वस्तु चुरा ली है या मैं कोई बहुमूल्य वस्तु वहीं भूल आया हूँ। मन वश में नहीं, चित्त में चैन नहीं।

[मोहिनी का गाते हुए प्रवेश]

भ्रमर, तुम मधु के चाखन हार।
आम की रसभरी मृदुल मंजरी तासों प्रीति अपार॥
रहसि रहसि नित रस लेवे को धावत हैं करि नेम।
क्यों कल आई कमल बसेरे कित भूले प्यारी को प्रेम॥

नारद—कौन ? सुन्दरी, तुम कौन हो ?

हे मृग नयनी तूने किस माया से मुझे लुभाया है
एक दृष्टि में ही बरबस यह मेरा चित्त चुराया है
दर्शन देते ही तूने सब मेरा ध्यान भुलाया है
क्या है नाम बता तेरा यह रूप कहां से पाया है ?

मोहिनी—मेरा नाम मोहिनी है--

मोह माया से बनी हूँ स्वर्ग मेरा वास है
जो भजे मुझको उसी के सब दुखों का नाश है
तीन लोकों को मैं इंगित से नचाना जानती
मोहिनी हूँ मदभरी यह जगत मेरा दास है

नारद—मोहिनी, मोहिनी, बड़ा सुन्दर नाम है तुम्हारा--

तू सुन्दर है तू सुखकर है
तू तीन लोक से न्यारी है
तू अनुपम सी छवि वाली है
तू सभी सुखों की क्यारी है
तू पृथ्वी को वश में करती
तू स्वर्ग लोक की नारी है
जो मन था प्रभु में लीन हुआ
वह तेरा आज पुजारी है ।

मोहिनी—नहीं, नहीं, मैं ऐसे कुरूप पुरुष से बात भी नहीं करना चाहती ।

नारद—अच्छा तो मैं कुरूप हूँ ?

मोहिनी—मेरे लिये तो अवश्य ही हो ।

नारद—किंतु मैं तो तुम्हें चाहता हूँ। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं जिससे मैं सुन्दर हो जाऊँ?

मोहिनी—हां है।

नारद—वह क्या है?

मोहिनी—यही कि जाकर विष्णु भगवान से उनका रूप मांग लाओ।

नारद—ऐसा ही होगा—जाऊँगा, हे सुन्दर मुख तेरे लिये मैं विष्णु भगवान का रूप मांग लाऊंगा।

[गाना]

ओ सुन्दर ननों वाली मैं हारा तुमसे हारा
क्या चाल चलो मतवाली
मोहिनी है तुमने डाली
ये लट जो घूंघर वाली
इनमें मन फँसा बिचारा
मैं हारा मैं हारा मैं हारा तुमसे हारा



अंक ३— दृश्य १.

स्थान—रावण की राज सभा—सभासद खड़े हैं राज सिंहासन पर रावण बैठा है।

गाने में सम्वाद—

रावण—यश तेज जगत में किसका है ?
जग को अब किसकी है शंका ?

सब— यश रावण का फैला जग में
सबके मुँह में तेरी महिमा

रावण—सूरज किसका चन्दा किसका

सब— सूरज तेरा चन्दा तेरा

रावण—मघवा किसका ब्रह्मा किसका

सब— मघवा तेरा ब्रह्मा तेरा

रावण—यह काल बँधा है कहां कहो
और कौन चलाता पंखा है

सब— यह काल बँधा है पास तेरे
और पवन चलाता पंखा है ॥ यश॰ ॥

रावण—वीरो, त्रिपुरारि भगवान शंकर के वरदान से हम अमर हो चुके। हमारी मनोकामना सफल हुई।

सब— देवताओं की इच्छा विफल हुई।

रावण—क्या वह विष्णु अभी मुझसे बड़ा है ?

सब-- कभी नहीं हो नहीं सकता—वह गिरा पड़ा सड़ा है।

रावण—क्या अब भी सारे के सारे देवता मिल कर भी मेरी समता का विचार कर सकते हैं--

सब— कभी नहीं; कदापि नहीं; तीन लोक और तीन काल में नहीं।

रावण—तो हुआ मैं चक्रवर्ती ?

सब— चक्रवर्ती, विश्ववर्ती और ब्रह्माण्ड वर्ती।

गाने में सम्वाद--

रावण--वह इन्हीं भुजाओं का बल था
जिसने ब्रह्माण्ड को हिलवाया

सब— हिलवाया क्या कँपवाया भी
सारे वीरों को थर्राया

रावण—मेरे इस खड्ग के नीचे अब
बैरी किस भांति से दबते हैं।

सब--जो दबते हैं वे बचते हैं जो दबते नहीं वे मरते हैं।

रावण--सब एक दम

सब-- जग के स्वामी हम--किससे हैं कम
सारी सेना महाराज की

रावण—पाया है वर हमें किसका है डर

सब— हर हर हर हर, बोलो जै जै महादेव की ॥

रावण--आ हा हा मेरा ऐश्वर्य मेरा बल अब संसार को कुचल डालेगा, मेरे समान भाग्यशाली योधा--

सब-- कोई नहीं; कहीं नहीं ।

रावण--इन्द्र जीत मेरा पुत्र, कुम्भकर्ण मेरा भाई, कुबेर मेरा कोषपति खरदूषणादि मेरे सहचर समुद्र के बीच मेरी लंका--वह कैसी लंका ?

सब-- सारी सोने की; सर्वथा स्वतन्त्र ।

रावण--मेरे दस मस्तक, बीस भुजायें, प्रचण्ड पराक्रम, हम आज अपार आनन्द से पुलकित हैं ।

सब-- क्यों न हों; महाराज का पुरुषार्थ ।

रावण--देखो वीरो लंका में अब सर्वत्र आनन्द मंगल होना चाहिए ।

सब-- रावण महाराज की जय !

गाने में सम्वाद--

रावण--राज हमारा जग में सारा सुर नर मुनि आधीन ।

सब-- कर हम लेते सब जन देते धनी और धनहीन ॥

रावण--कर जब मांगो यदि बतलावे अपने को कोई दीन ।

सब-- हम कर देंगे चट से उसको तभी एक दो तीन ॥

राज हमारा० ॥

रावण--सैनिको, तुम सब जाकर ऋषि मुनियों से कर संग्रह करो जो न दे उसे मेरे पास लाओ और यदि आने में आना कानी करे तो तत्काल मार डालो । सारे राज्य में सूचना दे दो कि जप, तप, यज्ञ और पूजा कोई न करने पाए ।

—महाराज की जय हो—

[ढोलक लेकर डुग्गी] रावण महाराज की आज्ञा है कि जप तप संध्या पूजा हवन यज्ञ दान धर्म कोई न करने पाए जो इस आज्ञा को नहीं मानेगा वह छह महीने की फांसी पर लटका दिया जायगा।

अंक ३— दृश्य २

[शेष शायी विष्णु और लक्ष्मी क्षीर सागर में हैं]

नारद—[प्रवेश] क्षीर सागर वासी भगवान को नारद का प्रणाम स्वीकार हो।

विष्णु—कहिए नारद जी आप तो अभी आ पहुँचे। कुछ भूल तो नहीं गए।

नारद—नहीं महाराज, आपको एक विशेष कष्ट देने आया हूँ.

विष्णु—कहिए कहिए—

नारद—मुझे रूप की आवश्यकता है क्या आप अपनी सुन्दरता मुझे दे सकेंगे ?

विष्णु—अवश्य मेव—लीजिए इस कमण्डलु में मेरा रूप है इसके जल से तीन बार मुँह धोकर ही आप मेरे समान सुन्दर होजाएँगे।

नारद—जय हो भगवान की

तेरो ही नित ध्यान तू ही बसै प्रान [गाते प्रस्थान]

पर्दा

अंक ३—दृश्य ३

नारद—चट तीन बार मुँह धोना।

चट पट सुन्दरतम होना।

धन्य धन्य रे कमण्डल

रूप के मण्डल

सुन्दरता दे दो उज्ज्वल—कहां तक तेरे गुन गाऊँ

कैसे यह आनन्द बताऊँ

चट... ... ...होना [कमण्डल में तीन रंग काला

(दुहराना) नीला और लाल अलग अलग रखे रहें]

ये धोता हूँ पहली बार

यह हुआ मेरा शृंगार

यह आया लावण्य

ये चमका और ये दमका

चट... ... ...होना (दुहराना)

ये धोता हूँ दूसरी बार अब बना विष्णु का अवतार मोहिनी आओ और देखो वह कुरूप नारद यह अब कैसा सुन्दर होगया !

चट तीन... ... ...होना (फिर दुहराना)

ये धोता हूँ तीसरी बार अब हुआ दिव्य रूप चमत्कार

अब तो मोहिनी तुम्हारा तिल तिल मुझ पर बलिदान होगा देखो यह मेरा शृंगार।

मोहिनी—कौन रहा है मुझे पुकार।

नारद्—क्या मुझे नहीं पहचान पा रही हो? ठीक ही तो है मैं अब अत्यन्त सुन्दर न हो गया हूँ? इसी से पहचान पाना कठिन हो गया हूँ लिया है मैंने रूप सँवार।

मोहिनी—इसमें क्या सन्देह बन चुके हो पूरे कामदेव के अवतार।

नारद—तो आओ और पास बैठो करो न प्रेम व्यवहार—

मोहिनी—इस मूर्ति को दूर ही से नमस्कार [जाती है]

नारद—है, मोहिनी चली गई! मेरे रूप का यह अपमान? यह कैसी छलना है इसका क्या भेद है? चलूं विष्णु से पूछ देखूं।

अंक २— दृश्य ४

क्षीर सागर में विष्णु और लक्ष्मी शेष शय्या पर बैठे हैं

नारद—[प्रवेश] प्रणाम महाराज।

लक्ष्मी—कहिए नारद जी, आज आप दिव्य रूप दीख रहे हैं किस कुँप में स्नान किया?

नारद—स्नान तो नहीं यही श्री भगवान के कमंडलु के जल से मुँह धोया है।

विष्णु—[हँसकर] कहिए नारद जी फिर उस रूप से आपने क्या किया?

[मुस्करा कर लक्ष्मी जी की ओर आँखें मटकाते हैं]

नारद—महाराज यह आपका और लक्ष्मी का बार मुस्कराना मेरे मन में सन्देह उत्पन्न कर रहा है। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं भ्रम की गंगा में डूबता चला जा रहा हूँ--सच कहिए यह बात क्या है ?

विष्णु—[मुस्करा कर] कुछ नहीं नारद जी—

पहला गण—मैं बताऊँ यह लो [दर्पण दिखाता है]

दूसरा गण—और मैं बताऊँ यह लो [दूसरी ओर से दर्पण दिखाता है]

दोनों गण—हे मदन के मर्दन करने वाले तपी आपको साष्टांग प्रणाम।

नारद — हैं, यह अपमान और रूप के स्थान में कुरूप। विष्णु मैं तुम्हें भली भांति जानता हूँ समुद्र मथकर हलाहल भोले शंकर के गले मढ़ा वारुणी से असुरों को बौराया और अपने लिए रखे अमृत, लक्ष्मी और कौस्तुभ मणि; ऐसे स्वार्थी हो तुम।

पहला गण—ऐसे स्वार्थी कि मोहिनी हाथ न आने दी और इतने दिनों की तपस्या का भी दाह विवाह के नाम सब स्वाहा हुआ।

दूसरा गण—लाख पर राख करवा दी सब के सामने नाक कटवा दी।

नारद—कोई सिर पर नहीं किसी का भय नहीं निरंकुश, तुमने आज मेरा यह अनादर किया। नारद का

अनादर साधारण सी बात नहीं इसका फल तुम्हें भोगना ही होगा; सावधान! मैं तुम्हें इस तुम्हारे ही कमंडलु के जल से अभिशाप देता हूँ [हाथ में जल लेकर] तुम जग में राम रूप से जन्म लोगे। स्त्री के सामने तुमने मेरा अनादर किया स्त्री के ही लिये तुम्हारा अनादर होगा। तुम बन बन भटकोगे दुख उठाओगे। जो वानर का रूप तुमने मुझे दिया वही वानर तुम्हारे सहायक मित्र होंगे।

पहला गण—हाय हाय नारद तुमने क्या किया आरत—

दूसरा गण—ऐसी भद भद; हसी हँसी में शाप, हाय रे मेरे बाप।

नारद— तुम दोनों ने मेरी हँसी उड़ाई है तुम जनता को दुखाने वाले राक्षस रूप से जन्मोगे।

दोनों गण—रक्षा करो नारद जी रक्षा करो।

पर्दा

अंक ३— दृश्य ५

वन में ऋषि मुनियों का आश्रम

ऋषियों का गाना—प्रभाती

दीन बन्धु दया सिंधु जग के सृजन हारे
माया तेरी है अपार तू है ब्रह्म निराकार
नावें शीश बार बार ऋषि मुनि तिहारे ॥

सब के घट वास करें काहुसों न जान परें
जो तेरो नित ध्यान धरें अन्त वाको तारे ॥
जो न धरत तेरो ध्यान वह है मूढ अति अज्ञान
जग में करत विष को पान क्षुद्र बुद्धि वारे ॥

[राक्षसों का प्रवेश और आपस में] इनसे भी लेना है

मुनि गण—मित्रो, इस बीहड़ वन में तुम्हारे आने का क्या कारण है और "इनसे भी लेना है" जो कह रहे हो सो हम से तुम्हें क्या लेना है ?

राक्षस—सुनो वन चारियो, महाराजाधिराज श्री रावण चक्रवर्ती की आज्ञा है कि प्रत्येक व्यक्ति से कर लिया जाय अतः हमें तुमसे कर लेना है ।

मुनि गण—भाइयो, हमारे पास कर देने को है ही क्या ?

राक्षस—कुछ है या नहीं, हम यह कुछ नहीं जानते परन्तु कर देना ही होगा ।

मुनि गण—[एक घड़ा लाकर उसमें अपनी अपनी उँगली काट कर रक्त निकाल कर भरते हैं फिर घड़े को देते हुए] लो, हमारे रक्त से भरे इस घड़े को ले जाकर अपने महाराज को दे देना [राक्षस घड़ा लेकर जाने को प्रस्तुत होते हैं] किंतु ध्यान रखना कि यही घड़ा रावण के नाश का कारण होगा ।

पहला राक्षस—हैं, अब क्या किया जाय ?

दूसरा राक्षस—ले जाया जाय—नहीं तो रावण के नाश से पूर्व तो अपना ही नाश न हो जायगा?

पहला राक्षस—हां भाई ठीक कहा तुमने—चलो चलें।

पर्दा

अंक ३—दृश्य ६

स्थान—रावण का महल—रावण बैठा है

घड़ा लेकर राक्षसों का प्रवेश—

रावण—कहो वीरो, इस घड़े में क्या सम्पत्ति ले आए हो?

राक्षस—महाराज एं एं एं (सिर खुजाता है)

रावण—शीघ्र बताओ इसमें है क्या?

राक्षस—कुछ तपस्वियों ने कर देने को कुछ न होने के कारण अपने रक्त से यह घड़ा भर कर कर में दिया है और एं एं एं (सिर खुजाता है)

रावण— कहो कहो निर्भय कहो।

राक्षस—और घड़ा देकर उन तापसों ने कहा कि यही घड़ा रावण के नाश का कारण होगा।

रावण—यदि ऐसा है तो इस घड़े को इसी क्षण यहां से हटाओ और इसे जनकपुरी में ले जाकर गाड़ आओ—रावण कांटे से कांटे को निकालना भली भांति जानता है। राजर्षि जनक जैसे धार्मिक नृपति का नाश रावण क्यों न चाहे? इस घड़े से उसी का नाश हो वह भी क्या बुरा है—

पर्दा

अंक ३— दृश्य ७

स्थान—क्षीर सागर

[देव गणों का पर्दे के अन्दर गाना]

गाना—

जय ब्रह्मा जय जगनाथा सुनिये विनय हमारी।
जय भक्तन हितकारी प्रभुजी, जय भक्तन हितकारी।
रावण अति ही नीच निशाचर, देत हमें दुख भारी।
आये तव शरणागत प्रभुजी, राखो लाज हमारी॥
॥ जय० ॥

विष्णु—तो क्या समय आगया, इधर नारद का शाप और उधर ऋषि मुनियों का संताप विलाप, एक ओर की आज्ञा जाओ, दूसरी ओर की विनती आओ। क्या अब यह क्षीर सागर छोड़ना ही पड़ेगा? अपना आश्वासन कि:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्॥

पूरा ही करना पड़ेगा। देव गण, व्याकुल न होओ मैं आता हूँ।

गाना—

भारत सुखी बनेगा, आनन्द धाम होकर।
राक्षस सभी मिटेंगे, सब लुप्त नाम होकर॥
तज शंख को अब, लेता हूँ धनुष कर में।
हरने को दुःख सारे, आता हूँ राम बन कर॥

[यवनिका पतन]

श्री

रामाश्वमेध

पात्र—

राजाराम— अवधपति	विभीषण— लंकाधिपति
लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न — राज पुत्र राम के भाई	जीटक धोबी—धोबी
	दुर्मुख—गुप्तचर विभाग का अध्यक्ष
	चुन्नू—रजक पुत्र
हनुमान— राम सेवक	मुन्नू— ”
वशिष्ठ— राज गुरु	लव— राम पुत्र
वाल्मिकि— रामायण लेखक	कुश— ”
	सेना, सैनिक, आदि।

पात्रियां—

सीता ... ... अयोध्या की रानी

सुखिया ... ... धोबन

परिचारिका आदि।

मंगलाचरण

नीलाम्बुज श्यामल कोमलांगम्
सीता समारोपित वाम भागम्
पाणौ महासायक चारु चापम्
नमामि रामम् रघुवंश नाथम् ॥



स्वीकार पत्र—

नारद मोह तथा राजाश्वमेध ये दोनों नाटक दीर्घ अवधि से रानीखेत रामलीला कमिटी द्वारा खेले जाते रहे हैं; कुछ सुधार के साथ ये मुद्रित तथा प्रकाशित हैं। एतदर्थ उक्त कमिटी के हम कृतज्ञ हैं।

—प्रकाशक

रामाश्वमेध

अंक १— दृश्य १

छाया दृश्य

रजत पट के पीछे प्रज्वलित अग्नि को सीता प्रणाम कर श्लोक पढ़ती है:—

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्न संगे
यदि मम पतिभावो राघवादन्य पुंसि
तदिह दह ममांगम् पावनं पावकेदं
सुकृत दुष्कृतानां त्वं हि कर्मैक साक्षी ॥

हे अग्निदेव मेरे सतीत्व के एक मात्र साक्षी तुम्ही हो जयराम [कह कर अग्नि में प्रवेश करती है]

इसके उपरांत जैसे ही बाहर निकल कर आती है समवेत जय घोष "सती सीता की जय" होता है राम सीता का आलिंगन।

[पर्दा]

अंक १— दृश्य २

[स्थान राज सभा—समय सायंकाल, राम लक्ष्मण, भरत शत्रुघ्न, हनुमान, वशिष्ठ, दुर्मुख सेवकादि उपस्थित, वशिष्ठ राम का राजतिलक करते हैं]

पर्दे के पीछे से समवेत गाना—

जय जय राम जय जय राम राम राम राम राम
राजा राम राजा राम राम राम राम राम

वशिष्ठ—राम, तुमने चौदह वर्ष तक वन में कठिन दुःख उठाए हैं अब अपने पूर्वजों की भांति राज काज संभालो तथा प्रजा रंजन करो।

राम— ब्रह्मर्षे, विगत चौदह वर्षों की स्मृति आज कुछ सुखकर सी प्रतीत होने लगी है। यह राज काज किंतु उससे कहीं अधिक कठिन सा बोध होरहा है फिर प्रजा रंजन! वह कैसे मैं कर सकूंगा। यह भी कृपया बतावें। आपके आशीर्वाद, दिग्दर्शन और उपदेश ही मेरे अवलम्ब हैं।

वशिष्ठ—वत्स, राज्य एक बहुत बड़ा परिवार है और राजा उसका परिपालक। प्रजा की भलाई और सुख के लिए आवश्यक होने पर परिवार का, स्त्री-पुत्रों का एवं अपना भी बलिदान कर देने को सदैव प्रस्तुत रहना चाहिए।

राम— प्रजा के लिए राजा और उसके परिवार का बलिदान?

वशिष्ठ—अवश्य कर देना होगा।

राम— मुनिराज आपकी इच्छा ही मेरे लिए आदेश हो! दुर्मुख, तुम अपने गुप्तचरों को प्रजा में भीति उत्पन्न करने के लिए नहीं वरन प्रजा के दुःखों को उनके

राज्य के विरुद्ध के आरोपों और अभियोगों को जानने को फैला दो और समय समय पर मुझे उनकी आपत्तियों की सूचना देते रहो, वे मेरे ही विरुद्ध क्यों न हों मुझे अवश्य सूचित करो कि मैं प्रजा-रंजन कर सकूं।

दुर्मुख—जैसी महाराज की इच्छा।

[पर्दा]

अंक १— दृश्य २

[जीटक धोबी का गृह—जीटक कपड़ों की गठ्ठी गले से पीठ पर लटकाए आता है गठरी रख कर पसीना पोंछ कर गठरी के सहारे बैठ जाता है]

जीटक—कैसी भयानक गर्मी पड़ रही है और गठरी भी तो कितनी भारी है ! कल की रात घाट पर ही बीती। मैं था, और थीं बासी रोटियां, सुखिया से गठरी लेने घाट पर आने को कह गया था, पर वह नहीं आई—सुखिया, ओ सुखिया, थोड़ा पानी तो पिला जा। कलेजा मुँह को आरहा है। अरे बोलती क्यों नहीं। चुन्नू ओ चुन्नू !

[चुन्नू का प्रवेश]

चुन्नू— क्या है अब्बा ?

जीटक—अम्मा कहां है रे ?

चुन्नू— अम्मा, अम्मा तो छोटी नानी के गई।

जीटक—छोटी नानी के ! कब गई रे !

चुन्नू— कल ।

जीटक—तो क्या तुम लोगों को यहीं छोड़ गई ?

[मुन्नू का प्रवेश]

मुन्नू— कह दिया सब कुछ कह गया ना ? मैंने अम्मा से तभी कह दिया था कि यह चुन्नू अब्बा के आने ही सब कुछ कह डालेगा—हुआ न वही ।

जीटक— अच्छा यह बात भी है !!!

[दुर्मुख का प्रवेश]

दुर्मुख—[स्वतः] राजा राम के विरुद्ध प्रजा के अभियोगों का कहां से और कैसे कोई सूत्र मिले फिर भी राजा राम यह जानने को उत्सुक हैं । उन्हें कुछ तो बताना ही होगा । देखूं कोई बात कहने को यहीं हाथ आजाय । इस घर में कलह होता जान पड़ता है बात ही बात में कोई बात निकल ही आवेगी यहीं इस कोने में से सुनूं [छिपता है]

जीटक—[गठरी से मद की तुंबी निकाल कर मद पान करते हुए] दिन भर घाट में घुटने घुटने पानी में गठ्ठी पीटना और सांझ को घर में आकर देखो तो ये सारी दुख की बातें; इन सारी चिन्ताओं को दूर करने तूंबी तेरा आसरा पक्का है । तू जब पेट में है फिर क्या चिन्ता !

[सुखिया का गाते हुए प्रवेश]

सुखिया— गाना—

सुन्दर सी सारी मोरी मइके में मइल भई
का लइके जइहों गवनुवां राम
ना मोपे गुन ढंग ना मोपै जुबना
ना मोपै नीको गहनुवां राम
ए गंगा माई तो को चुँदरी चढ़इहौं
सइयां से करदे मिलनुवां राम
माइरे बाप की बड़ी रे दुलारी
कबहूँ न छूई रसरिया राम
जब से पड़ी बेमनुवां के पाले
दो दो भरावे गगरिया राम
मुखड़ा तो मेरा चांद सा टुकड़ा
बाल हैं रेशम की लड़ियां राम
सीना तो मेरा मिस्ले नगीना
चीते से पतली कमरिया राम
एकइ कुठरिया में खाना रे जाना
एकइ कुठरिया में सोना राम
बेमनऊ तुम अलगै बिछइहौ
नैहर के पाले जुबनुवां राम

जीटक—क्यों री चुनुआ की मां अब आरही है !

सुखिया—हूँ, तुम आज भी चढा के ही रहे !

संवाद संगीत

जीटक— बरेठन कहां गंवाई सारी रात

सुखिया—बरेठा, सुन लो मेरी बात

मैं अपने मौसी के गई थी करती रह गई बात

आते आते पथ पर थक गई बीत गई यों रात

बरेठा सुन लो मेरी बात

जीटक—तू तो मौसी के जा धमकी, नहीं बनाया भात

चुन्नू मुन्नू मैं रहे भूखे क्या खाएगी लात

बरेठन कहां गंवाई सारी रात

सुखिया—दारू पी के क्यों झगड़ो तुम क्यों फिर तानो लात

मोल की बांदी मुझे समझते अब न चलेगी घात

बरेठा काहे मारो लात

जीटक— बरेठन कहां गंवाई सारी रात

सुखिया—अबला पर तुम लातें तानो अन्त तो धोबी जात

जीटक— जैसी सीता रामचन्द्र के मैं न करूं वह बात

बरेठन कहां गंवाई सारी रात

सुखिया— बरेठा काहे तानो लात ॥

जीटक—जा, चली जा मौसी के ही चली जा, अपनी तो धोबी की ही जात है पर ऐसी भगेडू को निभाना अपनों में नहीं चला आता है। अभी पंचायत बैठ जाय तो क्या उत्तर दूं। हम भी कोई राजा राम

जैसे होते तो महीनों रावण के घर रही सीता को भी ले आते और रानी बना कर रख लेते।

[सुखिया रोती है]

दुर्मुख—[स्वगत] हैं, यह धोबी और इसका यह कहना ! यह सीता माता को लाञ्छन लगाने से न चूका। चलो, महाराज को सूचना देने को कुछ हो ही गया।

[प्रस्थान]

अंक ३—दृश्य ४

स्थान अन्तः पुर—राम और भरत

राम— भाई भरत यह राज्य भार कितना जटिल है ! मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं अपना सारा निजत्व खो चुका हूँ। मेरी अब अपनी कोई इच्छा ही नहीं रही, मैं समस्याओं की किसी भी मीमांसा तक नहीं पहुँच पाने से केवल मात्र एक अन्धकार की ओर ही बढ़ता चला जारहा हूँ।

भरत— ऐसा यह आपने लोक कल्याण की भावना को अपना कर ही न कर दिया है ! किंतु जब दो का एक मत नहीं हो पाता तब एक विस्तीर्ण राज्य की प्रजा का एक मत ! यह आकाश कुसुम चयन कठिन ही नहीं असम्भव है।

राम— असम्भव हो वा सम्भव अपना तो पथ अब मुनिराज ने ही निश्चय कर दिया है।

भरत— वह कौन सा पथ ?

राम— वही जो अभिषेक के समय उन्होंने बता दिया था कि प्रजा रंजन के लिए अपना, बन्धुओं का, पुत्र और स्त्री तक का बलिदान कर दिया जाय।

भरत— बलिदान राजा कर सकता है अपने मन के सन्तोष के लिए, किंतु इससे ही क्या प्रजा रंजन हो जायगा!

राम— कर्म फल तो अपने हाथ में नहीं है किंतु कर्म कर देना और वह सन्मार्ग में सत्संकल्प से कर देना यही अपने हाथ का है। प्रजा के कल्याण की कामना यही मेरा कर्त्तव्य होगा यही मेरी एक मात्र चिन्ता दिन रात की होगी। राजा को फिर शांति कहां—राजा—वह तो चिन्ता की सजीव मूर्ति है।

भरत— इतना होने पर भी तो अनेकों राजा बनना चाहते हैं।

राम— वह इस लिए कि वे राजा की चिन्ता के कष्टों को नहीं जानते। उसके सिंहासन और मुकुट की चमक से उनकी आंखें चौंधिया जाती हैं। राख से दबी भूभल की आग का उन्हें दूर से दाह नहीं लगता।

[दुर्मुख का प्रवेश]

दुर्मुख—प्रजा रंजक राम की जय हो।

राम— कहो दुर्मुख, प्रजा सुख से तो है ?

दुर्मुख—प्रजा में सर्वत्र सुख छाया हुआ है रविकुल तिलक, तथापि·········

राम— हां कहो तथापि········ ?

दुर्मुख—यही कुछ नहीं.........

राम— हूँ कुछ नहीं यही शब्द तो बताते है कि कुछ अवश्य है [भरत की ओर देखते हैं]

भरत— मैं चलूं, शत्रुघ्न ने आज शतदल व्यूह रचना देखने को मुझे भी बुलाया है। [जाना]

दुर्मुख—आपके वर्तालाप में मैं यों ही बाधक बना।

राम— किंतु दुर्मुख तुम्हारा इस कक्ष में आना क्या इस बात का द्योतक नहीं कि तुम अवश्य कोई सूचना लाए हो। और तुम्हारी सूचना क्या सब के सामने कहने योग्य हो सकती हैं।

दुर्मुख—किंतु..........

राम— दुर्मुख अब धैर्य पूर्वक जो कुछ कहना है कहो।

दुर्मुख—प्रभु, मैं यों ही प्रजा के अभियोगों को जानने गुप्त रूप से विचरता धोबियों की गली में जा पहुँचा—वहां एक धोबी और उसकी धोबन का कलह हो रहा था [स्वगत] यह तो अब और नहीं कहना चाहिए।

राम— पति पत्नी का कलह यह समाज का बुरा अभिशाप है—हां तब इस कलह में क्या हुआ ?

दुर्मुख—[स्वगत] अब क्या कह दूं (प्रकट) वही वह कुछ अभियोग की सी बात करता था।

राम— उसका अभियोग क्या राज्य के विरुद्ध था। उसे क्या कार्य और उसका वेतन नहीं मिल पाए ?

दुर्मुख—कार्य और वेतन की व्यवस्था सब ठीक है प्रभु, यह इस राज्य में सबके लिए लगाई हुई है।

राम— तब उसके अभियोग राज्य के विरुद्ध क्या थे?

दुर्मुख—यही कि राम की भांति घर से बाहर कई मास तक रही सीता को अंगीकार कर लेने वाले राजा राम की भांति मैं बाहर रही पत्नी को अपने घर में नहीं रख सकता।

राम— हाय! यह मैं क्या सुन रहा हूँ!

दुर्मुख—नहीं, नही, प्रभु मैं झूठ बोला हूँ. मैंने यह बात गढ़ दी है, उसने यह ऐसा कुछ नहीं कहा था।

राम— नहीं वत्स, तुम राम के प्रस्तर हृदय को इतना दुर्बल न जानो। मुझे भली भांति विदित है कि राम की निर्भय प्रजा में से कोई भी झूठ नहीं बोलता फिर राज कर्मचारी और झूठ!

दुर्मुख—नहीं, नहीं ... ...

राम— यह कर्तव्य पालन का कठोर व्रत ऐसा ही विकट है, प्रिय दुर्मुख, इसमें तुम्हारा दोष ही क्या है तुमने जो कुछ सुना वही मेरी ही आज्ञा के पालन में यथार्थ रूप से वर्णन कर दिया इसमें भय, शंका द्विधा के लिए कोई स्थान नहीं है; [स्वगत] किंतु राम अब आगे को क्या करे? (अधिक चिंता की मुद्रा)

दुर्मुख—[स्वगत] मेरा ही यह दुर्भाग्य हुआ कि यह अप्रिय सत्य स्वामी के सम्मुख मुझे ही प्रकट करना पड़ा।

राम— जाओ सत्यवादी वीर, मेरे इस प्रलाप से तुम अपने हृदय को दुर्बल न करो—राम तुम्हारी हृदय से प्रशंसा करता है।

दुर्मुख—[स्वगत] जिह्वे यह सब कुछ कहने के पूर्व तुम कट कर गिर क्यों न पड़ीं; कान, तुम बधिर क्यों न हो गए और नेत्र तुम्हारी शक्ति लुप्त क्यों न होगई ?

[प्रस्थान]

राम— सीते, प्राण प्रिये, तुम, नहीं न[illegible], यह सब कुछ कुछ नहीं; हाय जनक नन्दिनी, यौवन के अरुणोदय में हम वनवासी बदि हुए भी तो क्या विरह के बादलों ने रावण रूप से उसी समय घिर आना था और अब प्रौढ़ता के इस अपराह्न काल में भी इस केतु की छाया ने आजाना था सन्ध्या का अस्तकाल तो वियोग का होता ही किंतु हमारा तो मिलन ही सदैव वियोग मय हुआ ! प्रजा रंजन के लिए पत्नी का त्याग आत्म बलिदान। मैं सौ सौ बार अपना बलिदान कर दूं किंतु—गुरु देव क्षमा करो यह मेरे हृदय की दुर्बलता है। किंतु सीता—सती, पति परायणा, दीप शिखा की भांति शुभ्र आलोक मयी, हिमालय से स्वच्छ और आत्म व्रत वाली, सरला, साध्वी, श्रद्धा, स्नेह, विश्वास और प्रेम में अद्वितीय सीता—तुम्हारा त्याग कभी दैवेच्छा से तो अब स्वेच्छा से ! सूर्य वंश की परम्परा, साम्राज्य, प्रजा, नगरी, राज प्रासाद, क्यों न ये तृणवत् त्याग दूं।

किंतु सीते, तुम्हें, वह भी दोषारोपण पर ! अरे वह क्या राम, तुम क्षणिक मोह पाश मे कर्तव्यच्युत हो जाओगे ? आह, इसी निष्ठुर कर्तव्य और प्रजा रंजन के नाम पर सीते, राम तुम्हें अग्नि परीक्षा के उपरांत भी लोकापवाद के नाम पर ही त्याग कर अपने को दूषित कर तुम्हें उज्वल तर करेगा ।

[प्रस्थान]

अंक १— दृश्य ५

[स्थान—धोबियों की चौपाल]

धोबियों का समवेत गान

[प्रधान गायक खड़ा होकर कमर झुका कर बांए कान में बांया हाथ लगा कर एक बार अकेले गाता है फिर सभी गायक तसला कांसे का कटोरा डफली बजाकर दुहराते हैं]

वंशी बाजी नागर नटकी मेरे मन में अटकी-मेरे०
मेरे मन बस गई बांकी छब कमर तले लटकी लट की
रूठी राधा गई कुब्जन को श्याम मे इसकी क्या खटकी
वंशी के सुर में मोहित हो चली ओर जमुना तट की ॥
॥ वंशी० ॥

चौधरी—क्यों भई, मुखिया लोगो आज ये पंचायत कैसे बुलाई गई है ।

पहला मुखिया—चौधरी जी, आज बिरादरी की पंचायत का ढाई रुपया जीटक ने लाकर दिया है और वह पंचों का न्याव चाहता है ।

दूसरा मुखिया—अजी न्याव चाहता है, दारू पी के बरेठन से झगड़ा और ढाई रुपया दे के बुला ली बिरादरी की पंचायत, बच्चू को साढे सात की टुकती बुलाई जाती पूरे नगर की पंचायत और दारू पीने पर लगाई जाती रोक। सारा न्याव ठीक का ठीक हो जाता।

चौधरी—मुखिया भइया बात तो तुमने सोलह आने पक्की कही, बोलो भला पीए खाए में छोटे छोटे झगड़े ये किसके नहीं हो जाते। तब क्या बात बात की पंचायत बुलाई जाती है। राजा राम के कपड़े धोता है धुलाई चोखी मिल जाती है पीने को भी हो जाता है और पंचायत को भी बच रहता है। उसका क्या वह तो बिरादरी बाहर पंचों को साढे सात देकर भी बुलवा ले। रोना तो अपना है।

पहला मुखिया—चौधरी जी, वह कहता है कि पिये तो मैं था पर था आपे में, आपे से बाहर नहीं था साखी उसके दोनों बेटे चुन्नू मुन्नू भरते हैं। दोष तो बरेठन का भी है वह गई थी अपनी मौसी के।

चौधरी—अरे मौसी के गई तो हुआ क्या, बहुयरवानी के दो ही घर आने जाने के तो हैं या बाप को या सुसर का.

प० मु०—सो तो ठीक, वह कहता है कि बाप के ही तो नहीं गई मौसा के क्यों गई।

चौधरी—बक ही रही वह भी "मां मरे मौसी जीए" मौसी और मां में इतनी बड़ी बात हो गई !

दू० मु०—लो, चौधरी जी, जीटक बरेठा भी आ ही गए। अब इनकी इन्हीं के मुँह से सुनिए। [जी० का प्रवेश]

चौधरी—बैठो जी जीटक।

जीटक—चौधरी जी, मैं यों ही ठीक हूँ। आज तो मैंने अपनी विनती सुनानी है।

चौधरी—तो बैठ के न सुनालो।

जीटक—नहीं चौधरी जी, आज यह न होगा।

चौधरी—अच्छा जैसे तुम चाहो अच्छा तो कहो।

जीटक—कहूँ क्या, बिरादरी की बातें न पूछो बुरी बुरी बातें जितनी हैं सब हो रही हैं उस दिन मुनिया के ब्याह की बिदा में बिरादरी दो घंटे इकट्ठी नहीं हो पाई बारात रुकी रह गई; अभी परसों सुखुवा की मट्टी चार घंटे रखी रही।

मुखिया—ये इधर उधर की बातें छोड़ो हमें क्या करना है मिट्टी न उठाने पर किस किस का हुक्का पानी बन्द किया जाय। बिदा में न आने का किस किस को दण्ड दिया जाय। क्या यही तुम चाहते हो या कुछ और?

चौधरी—तुम अपनी बात कहो जिसका ढाई रुपया तुमने दिया है क्या इसी बात का न्याय किया जाय जो तुम कह रहे हो?

जीटक—मैं मैं मैं... ... ...

चौधरी—ये बकरी की नाईं मिमियाने क्यों लगे? (हँसी)

जीटक—यही ना चुनुवा की मां— [सुखिया का प्रवेश]

(देख कर चौंक कर सिर खुजाता है)

सुखिया—पंचो, मुखिया लोगो और चौधरी जी, आप क्या जानें जिस घर में पीने वाला मनई हो उसकी कौन गत होती है।

जीटक—पंचो, मुखिया लोगो और चौधरी जी, आप क्या जानें जिस घर में चिड़ चिड़ी, कलेस मचाने वाली, लड़ाका, कुलच्छन नार होती है उस घर की कौन गत होती है?

प० मु०—हम तुम दोनों की ही गत नहीं जानते तब फिर पंचों का न्याव कैसा?

दू० मु०—चलो जी ये गड़ बड़ बातें छोड़ो बोलो अब अभी क्या करना है। पहले साखी लो—चौधरी जी पहले आप साखी लें। कहिए— ऊपर आकाश है नीचे धरती है नारान पनमेसुर सब में है। हम जो कुछ भी यहां पर करेंगे जान बूझ के झूठा नहीं करेंगे काम हमारा सच्चा होगा।

चौधरी—लो भई—ऊपर आकाश है नीचे धरती है, नारान पनमेसुर सब में हैं हम जो कुछ भी यहां पर करेंगे जान बूझ कर झूठा नहीं करेंगे काम हमारा सच्चा होगा।

[इसी प्रकार दोनों मुखिए भी साखी उठाते हैं:—

प० मु०—ऊपर आकाश है नीचे धरती है नारान परमेसुर सब में हैं हम जो कुछ भी यहां पर करेंगे जान बूझ के झूठा नहीं करेंगे काम हमारा सच्चा होगा ।

दू० मु०—ऊपर आकाश है नीचे धरती है नारान परमेसुर सब में हैं हम जो कुछ भी यहां पर करेंगे जान बूझ के झूठा नहीं करेंगे काम हमारा सच्चा होगा ।

प० मु०—आओ जी जीटक, तुम भी साखी उठाओ अपने दोनों बेटों की—कहो दोनों बेटों की सौंह ले के कहता हूँ मैं पंचों में झूठ न बोलूंगा सब बातें सच्ची कहूँगा ।

सुखिया—रहने दो, मैं जनम मायके में काट लूंगी, क्या कुछ धंदा करके पेट नहीं भर लूंगी ? पर दोनों बेटों को नहीं कसुंगी । जने कितने टोने, गराडे, मनौती करके दो लाल पाए, आज उन्हें यहां पंचों में कसने दूंगी। बेटे मेरे हैं मैंने दस महीने पेट में ढोकर जने कितने दुखों से पाल पोस कर इतना बड़ा कर पाया हैं चलो रहने दो अपना न्याव अभी गुड़ की भेली, दण्ड के रुपए, बिरादरी ज्यौनार, दारू और न जाने क्या क्या और देना होगा चूल्हे में जाय यह सब; सारा घर तुम्हें सौंप कर मैं क्या चौरस्ते पै खड़ी रहूँगी । हमारा न्याव जो होना होगा हो लेगा । मुखिया और चौधरी अपने घर का न्याव करें । मैं क्या जानती नहीं चौधरान कल ही तो झींख रही थी । वैदजी पहले अपना हाथ देखें ।

[आवेश में प्रस्थान]

जीटक—अरे पंचो, मैं कहीं का नहीं रहा रे दइया रे अब मैं यहां पर क्या करूं ।

[प्रस्थान]

[और सारी पंचायत वाले हँसते हैं]

प० मु०—आज की पंचायत चोखी रही ! [सब अपनी अपनी कहते हैं कुछ पंचायत को कहते हैं] रही न धोबियों की पंचायत—अच्छा न्याव रहा—दोनों वादी चंपत, पंच और पंचायत की दुर्गत । चलो भई चौधरी के घर बैठक रहेगी । सब मिल कर "बंसी बाजी नागर नटकी०" गाते हुए जाते हैं ।

अंक १—दृश्य ६

[स्थान अन्तः पुर—सीता विराम मुद्रा में एक ओर एक परिचारिका वीणा पर गा रही है ।

गाना

चांदनी क्या छिटकी मन भाई ।
वन उपवन में रूप अनुपम सुन्दर सा ले आई ॥
शरद् निशा में मञ्जुल वीणा किसने आज बजाई
ललित कराठ युत नूपुर रव की नर्तन छबि बिखराई ॥

[राम का प्रवेश परिचारिका जाना चाहती है राम उसे रोक कर]

राम— गाओ, मेरे इस परिश्रान्त हृदय को कुछ विश्राम का सा बोध हो रहा है मैं भी सुनूं एक बार फिर गाओ [बैठते हैं]

परिचारिका—पुनः गाती है। चांदनी०।

सीता — आर्य पुत्र क्या कार्य भार कुछ अधिक है ? अन्तः कक्ष में इतने विलम्ब से ?

राम— नहीं तो--कुछ यों ही·········

सीता— यद्यपि यह राज प्रासाद, परिचारिकायें, पुष्प वाटिका, सुपाचित षट्रस भोजन आदि सभी वस्तुएं अत्यन्त मनोहर हैं तथापि इस कृत्रिमता के मध्य कुछ विचित्र उदासीन भाव मुझे ज्ञात होता है। चित्रकूट या पंचवटी की तुलना में ये सब क्या फीके नहीं ?

राम— अतीत की स्मृति अत्यन्त मधुर तथा वर्तमान अरुचिकर प्रायः सभी को सदैव से लगते आए हैं।

सीता— वन पशुओं का वह स्वच्छन्द विहार, विषम भूमि, नद नदी पक्षियों का कलरव इनकी स्मृति मेरे मन को प्रायः वन की ओर आकर्षित करती हुई सी ज्ञात होती है।

राम— मन तो मेरा भी कभी कभी ऐसी ही अभिलाषा में अभिभूत ज्ञात होता है।

सीता— आर्य पुत्र, एक बार इस राज्य भार से अवसर लेकर श्रांति मिटाने यदि फिर हम कुछ दिन वन में रहने चले जाते और आश्रम वासी तापस बालक

बालिकाओं से मिल सकते तो क्या वह कुछ आनंद-दायक न हो लेता ?

राम— इस परिवर्तन से जीवन की सरसता कल्पना मात्र से ही जाग उठ रही है।

सीता— अब तो मेरा मन एक बार फिर वन जाने की और भी अधिक अभिलाषा करने लगा है।

राम— तो हो आओ न प्रिये ?

सीता— आर्य, आप अच्छा चलेंगे न कह कर हो आओ कैसे कहने लगे ?

राम— [हँस कर] अरे यह तो अवश्य भूल हुई है [कुछ सोच कर] किंतु हां, यदि लक्ष्मण के साथ तुम हो भी आतीं

सीता— आपत्ति तो मुझे इसमें भी कोई विशेष नहीं तथापि

[प्रहरी का प्रवेश

प्रहरी— प्रभु, लवणासुर से पीड़ित प्रजा के प्रतिनिधि अपनी दुःख गाथा सुनाने महाराज की अपेक्षा में हैं।

राम— असुरों का तो मैं सभी का नाश कर चुका था क्या अब भी असुर उत्पात मचा रहे हैं ? जाऊँ, इसको भी निर्मूल करने शत्रुघ्न को भेजना ही पड़ेगा।

[शीघ्रता से प्रहरी के साथ गमन सीता की आश्चर्य चकित मुद्रा

पर्दा

अंक १— दृश्य ७

[स्थान प्रासाद-उपवन— भरत और लक्ष्मण]

भरत— राघव के इस निश्चय का अनुमोदन मैं किसी भी भांति नहीं कर सकता, अन्तर्वत्ती भाभी का परित्याग; ना, ना, रघुवंशी किसी भी स्त्री पर इतनी कठोरता न करेंगे; फिर राज महिषी पर !

लक्ष्मण—इसने यों ही होना है और वह होगा इसी अभागे लक्ष्मण द्वारा, राघव के निश्चय को पलट सकने की क्षमता है किस में ? फिर इसका उद्देश्य भी तो प्रजा रंजन है !

भरत— मद मत्त कलह रत एक रजक का प्रलाप ही का सारी प्रजा की इच्छा का द्योतक हो गया ? प्रजा रंजन क्या हो सकेगा ? फिर सबकी इच्छाओं की पूर्ति भी क्या सम्भव है ?

लक्ष्मण—सब मातायें, गुरु माता, गुरु देव सभी तो ऋष्य शृंग के यज्ञ में गए हुए हैं। राघव को वारण भी कौन कर सकता है ?

भरत— किंतु भरत अपना कर्तव्य अवश्य करेगा। कोई माने या न माने [राम का प्रवेश भरत राम से] यह सब क्या ठीक ही है कि—

राम— राम सीता का परित्याग करेगा वह सत्य ही है भरत।

भरत— क्या यह सर्वथा निश्चित ही है ?

राम— निःसन्देह।

भरत— किंतु यह असम्भव है। धर्म निष्ठ, न्याय निष्ठ और बुद्धिमान राजा का क्या यही विधान है ? भाबी जी राजा की पत्नी होने के कारण क्या साधारण प्रजा के लिए सुलभ न्याय की भी अधिकारिणी नहीं रहीं ?

राम— यही तो इस राज पद का प्रबल अभिशाप है; ये सोने की शृंखलायें---हथकड़ी और बेड़ियां—अपनी चमक से दूसरों को चौंधियाने वाली होकर भी धारण करने वाले को तो दुःखद ही हैं।

भरत— निश्चय ही यह अयोध्या का दुर्भाग्य है रघुकुल की भीषण कालिमा है इससे असहमति के कारण भरत भी इस प्रासाद का परित्याग चाहेगा।

[जाता है

राम— लक्ष्मण।

लक्ष्मण--[चुप चाप सिर झुका कर हाथ जोड़ लेते हैं]

राम— प्रजा मुझ से बहुत बड़ा त्याग चाहती है

लक्ष्मण—यही तो दुःख है।

राम— सीता के प्रति प्रजा के लाञ्छन—असत्य, अनर्गल, आवेश जनक और मिथ्या होते भी लोकापवाद का रूप लेते जा रहे हैं।

लक्ष्मण—सीता पर अपवाद—वे पागल हैं उन्मत्त हैं……

राम— केवल मात्र भावनाओं के पीछे हृदय की दुर्बलताओं को आवेश से प्रकट न करो। भइया प्रजा की इच्छा…………

लक्ष्मण—प्रजा की इच्छा है सरयू का प्रवाह उद्गम की ओर हो जाये सागर सुखा दिया जाय हिमालय ढा दिया जाय……… •

राम— यथा साध्य यह सब करने की सामर्थ्य होने पर इसे भी कर दिखाता और फिर जब इन उल्टी क्रियाओं से वे स्वयं व्यथित हो पूर्णवत् सब वस्तुओं को देखना चाहते तब ही तो सब झगड़े ठीक ठीक निबट पाते।

लक्ष्मण—पुरुष वर्ग के स्त्री के प्रति ये विषम व्यवहार क्या उचित ही मान लिए जावें? कौन जाने स्त्री जाति को निःशेष कर भी पुरुषों को यह समझ आवे या न आवे?

राम— [निकट आकर पीठ पर हाथ देकर] सम्भव है मेरे इस कार्य से यद्यपि मैं कलंकित अवश्य हो जाऊँगा तथापि सीता का यश और भी अधिक उज्वलतर हो सकेगा। और एक विचार अभी अभी मेरे मस्तिष्क में आरहा है। सीता को वनों में दीर्घ अवधि तक रहने से वनों से प्रेम होगया है वह फिर वनों में जाकर रहना चाहती है जाना तो वह मेरे ही साथ चाहती है परन्तु………

लक्ष्मण—परन्तु मैं इस कार्य के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ राघव !

राम— कर्तव्य भावना से सदैव ऊँचा है लक्ष्मण !

लक्ष्मण—किंतु राज महिषी का यह देश निकाला किस अपराध पर आप कर रहे हैं ?

राम— चौदह वर्ष वनवासी रह कर फिर अपराध पूछते हो ? हमने किसका कौनसा अपराध किया था ? लोभ वश मनुष्य का प्राण लेना पाप है किंतु आततायी के शिरच्छेदन के लिए राजाज्ञा से पुरस्कार घोषित किया जाता है ।

लक्ष्मण— तब पाप पुण्य की वर्गी करण रेखा क्या है ?

राम— जनहित ही पुण्य और समाज का अकल्याण ही पाप है । समाज की सुविधा के ही लिए पाप पुण्य ऐसे नामों की सृष्टि हुई है ।

लक्ष्मण— इस तर्क से मेरी बुद्धि भ्रमर जाल में डामा डोल हो जायगी । लक्ष्मण सदैव आज्ञा पालक सैनिक रहा है वह चिरकाल ऐसा रहना चाहता है उसे अब आप आज्ञा दें वह पालन करेगा ।

राम— चलो यह यों भी कुछ बुरा नहीं, हां तो कल प्रातः काल सीता को लेकर उसी की इच्छा की पूर्ति के निमित्त श्री वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में छोड़ आओ ।

लक्ष्मण—[राम के दाहने पैर की दोनों पिंडलियों को दोनों हाथों से कस कर कातर स्वर से] निर्जन वन में भाबी को छोड़ आऊँ क्या यही मेरे लिए आपका आदेश है ? मुझे वचन बद्ध जान कर आप ऐसी कठोर आज्ञा न दें।

राम— लक्ष्मण, यही तो राम का दुर्भाग्य है। यह क्या मेरी इच्छा है ?

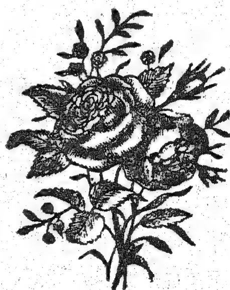
लक्ष्मण—नहीं कदापि नहीं।

राम— फिर इतनी कातरता सैनिक क्यों दिखाने लगा ?

लक्ष्मण—क्षमा, अब मैं प्रस्तुत हूँ—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।

(यवनिका)

पहला अंक समाप्त।



अंक २— दृश्य १

स्थान दण्डकारण्य—

रथ से लक्ष्मण और सीता का उतरना।

सीता— लक्ष्मण, यह वन कितना सुन्दर प्रतीत होता है, वह हरी भरी सुन्दर धरती, स्वच्छ निर्मल आकाश, शीतल मन्द पवन, वह लहलहाते हुए वृक्षों पर पक्षियों का चहचहाना, [लक्ष्मण की ओर देखकर] लक्ष्मण कुछ उदास से जान पड़ते हो, तुम्हें नहीं भाता यह उपवन का सौन्दर्य, लक्ष्मण तुम चुप क्यों हो, बोलते क्यों नहीं ?

लक्ष्मण— कुछ नहीं यों ही.........

सीता— नहीं, तुम कुछ छिपाते हो लक्ष्मण, सच सच कहो क्या बात है ?

लक्ष्मण—[स्वगत] आह, अब कैसे कहूँ किस मुँह से कहूँ ? [प्रकट] कुछ नहीं, यों ही कुछ बीती हुई बात याद आ गई थी। [लक्ष्मण का आंसू गिराना]

सीता— [आश्चर्य से] हैं ! तुम्हारे नेत्रों में आंसू ! लक्ष्मण तुम्हें मेरी शपथ यदि तुम अपना मन मुझ से न खोलो तो, कहो शीघ्र कहो, रघुनाथ तो कुशल से हैं ?

लक्ष्मण—आप जिनकी कुशल चाहती हैं उन्होंने.........

सीता— हां हां कहो, शीघ्र कहो उन्होंने क्या.........तुम रुक क्यों गए ?

लक्ष्मण—[स्वगत] हाय अब कैसे कहूँ, किस मुँह से कहूँ ?

सीता— लक्ष्मण, शीघ्र कहो मेरा चित्त घबड़ा रहा है।

लक्ष्मण—[स्वगत] यह अप्रिय सत्य उनके कोमल हृदय तक पहुँचने के पहले ही मेरी जिह्वा गल कर गिर भी तो नहीं आरही है।

सीता— अरे तुम कहते क्यों नहीं ? लक्ष्मण कहो, कहो अपने हृदय की व्यथा।

लक्ष्मण—इतनी कठोर आज्ञा, नहीं यह तुम सी कोमलांगिनी से सहन न होगी।

सीता— [विस्मय से] आज्ञा ? रघुवर की ? मेरे लिये ? और वह भी कठोर ?

लक्ष्मण—हां भाबी जी, अत्यन्त ही कठोर !

सीता— लक्ष्मण, तुम शीघ्र कहो रघुवर की आज्ञा, मैं उनकी कठोर से कठोर आज्ञा को भी हँसते हँसते सहन कर लूंगी, परन्तु मैंने अपने जाने कोई भी अपराध नहीं किया।

ल०— हां हां मुझे पूर्ण विश्वास है कि तुम सुरसरि की भांति निष्कलंक और पवित्र हो। लेकिन वह है कौन दुष्ट जो तुम्हें लाञ्छन लगाता है ? [क्रोध से] कहां है मेरा धनुष बाण [रथ की ओर बढ़ कर]

सीता— लक्ष्मण, आवेश में न आओ, देखो भावना से कर्तव्य ऊँचा है।

ल०— [लौट कर स्वगत] आह, अब कैसे कहूँ, आज मैं अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर भी यह समाचार सती, सीता को सुनाने में असमर्थ हूँ.........तो सुनो, अपने हृदय पर पत्थर रख कर सुनो। मुझ से रघुवर ने कहा है कि तुम्हें महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आऊँ।

सीता— क्या कहा? मुझे अकेली छोड़ कर चले जाओगे?

ल०— क्षमा करो तुम मेरे लिए पूज्य हो, मैंने तुमसे चौदह वर्ष तक माँ का दुलार, गुरु का आदेश तथा बड़ों की सहानुभूति पाई है। परन्तु क्या करूं, आज मेरा कर्तव्य मुझे विवश कर रहा है कि मैं तुमको असहाय इस वन में छोड़ कर चला जाऊँ। क्षमा करो, क्षमा करो।

सीता— परन्तु इसका कारण?

ल०— कारण पूछती हो? वही प्रजारंजन और कर्तव्य-पालन।

सीता— प्रजा क्या चाहती है लक्ष्मण?

ल०— [स्वगत] अब क्या कहूँ, मेरे हृदय में इतना बल नहीं, मेरी जिह्वा में इतनी शक्ति नहीं और मेरे मस्तिष्क में इतनी योग्यता नहीं कि मैं प्रजा की

इच्छा सीता के सामने प्रकट कर सकूं [प्रकट] कुछ नहीं, प्रजा पागल हो गई है।

सीता— इतने अधीर न होओ बताओ तो सही प्रजा क्या चाहती है ?

ल०— पतित प्रजा माता का परित्याग चाहती है।

सीता— यह क्यों ?

ल०— मिथ्या है, सब मिथ्या है।

सीता— क्या मिथ्या है ?

ल०— यही प्रजा का अपवाद।

सीता— कैसा अपवाद ?

ल०— मिथ्या अपवाद, मूर्ख प्रजा, अग्नि परीक्षा के महत्व को क्या जाने ?

सीता—हे भगवन्, तो क्या प्रजा को मेरे सतीत्व पर सन्देह है ! और पतिदेव ने भी विश्वास कर लिया ?

ल०— नहीं, ऐसा न कहो, वह तो तुम्हें अग्नि के समान निष्कलंक और पवित्र समझते हैं, उन्होंने केवल प्रजा की सन्तुष्टि के लिए ऐसा किया है।

सीता— आह, प्राणनाथ, आपने मुझ से अयोध्या में ही क्यों न कह दिया, अपने चरणों से अलग करने के पहिले ही अपनी इच्छाओं को मुझ पर प्रकट क्यों न होने दिया, मैं आपकी पदरज को अपने मस्तक

पर लगा लेती, आपके सुन्दर मुँह को एक बार प्रेम भरी दृष्टि से निहार लेती, हा नाथ !

[मूर्छित हो जाना]

ल०— आह, मैंने क्या किया, ऐसे कटु शब्द मुँह से निकले ही क्योंकर ? इसका कोमल हृदय इस आघात को न सह सका, हा जगदीश्वर ! क्या यही संसार का न्याय है ? राजराजेश्वरी सीता निरपराधिनी, दुखों से सताई हुई तेरा जन्म ही इस संसार में दुखों की पराकाष्ठा तक पहुँचने को हुआ। संसार में स्नेह और प्रेम से वंचित होते हुए भी तूने अपना जीवन, स्त्री जाति के लिए आदर्श बना दिया [सीता को देख कर] संज्ञा शून्य हो गई, क्या इसको इसी दशा में छोड़ जाऊँ, क्या यही मेरा कर्तव्य है ? क्या यही श्री राम की आज्ञा है ? विस्तृत आकाश, तू टूट टूट कर क्यों नहीं बरस पड़ता ? विशाल धरित्री, तुझ में सब कुछ समा जाता है तू ही क्यों नहीं फट पड़ती ? कि मैं तुझ में समा जाऊँ ? नक्षत्रो, तुम ही क्यों न टूट पड़ो ? सूर्य चन्द्र, तारे, पवन, अग्नि अब तुम ही अपना विशाल रूप धारण करलो और मुझे इस संसार से उठा लो। बोलो, बोलो अरे कोई तो बोलो [छुरी देख कर] हां बस यही एक उपाय है, तीक्ष्ण कटार तू ही अब यह जीवन समाप्त कर दे। [छुरा उठाता है हाथ कांपता है] क्या कहा, भावना से कर्तव्य ऊँचा है,

भावना से कर्तव्य ऊँचा है, भावना से कर्तव्य ऊँचा है, क्षमा करना, भगवन् इनकी रक्षा करना ।

[प्रस्थान]

[सीता का गाना]

गाना—(गौरी या आसावरी)

बांहें छुड़ाए जांय हम से करें मान
मन में बसें मेरे क्या दूर क्या नेरे
आंखें उन्हें हेरें जब ही लगा ध्यान ।

[मूर्छित होना]

[श्री बाल्मीकि मुनि का प्रवेश]

गाना—(आसावरी)

बाल्मीकि— काल की अद्भुत गत हम देखी
काहू को काल बनावत योगी
काहू को वियोगी काहू को संयोगी
वह सब पद पाई एके जनम में
आकुल दशा देखि व्याकुल विशेखी

[सीता पर पानी छिड़क कर जागृत करना]

पुत्री उठो, भगवान ने मुझे यहां तुम्हारी रक्षा के हेतु भेजा है, चलो आश्रम में चलो ।

[प्रस्थान]

अंक २— दृश्य २

[लक्ष्मण और हनुमान]

हनुमान—लौट आये भय्या, सीता माता की देख रेख का प्रवन्ध तो कर ही आये होगे ?

लक्ष्मण—[चुप रहता है]

हनुमान— हैं ! तुम सहम रहे हो ! क्या तुमने उनकी दशा पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, क्या तुमने यह भी न विचारा कि गर्भावस्था में अकेली ही वह वन के कष्टों को कैसे झेलेंगी ? तुम्हें इतना कठोर कभी न समझा था भय्या ?

लक्ष्मण—भय्या, ज्यों ही मैंने जानकी जी को उनके वनवास का समाचार सुनाया था, त्यों ही शोक के कारण वे मूर्छित होकर गिर पड़ीं।

हनुमान—तब तो तुमने उन्हें सान्त्वना दी होगी।

लक्ष्मण—सान्त्वना किस प्रकार देता ? मैं स्वयं ही विह्वल हो गया था। भय्या, कर्तव्य ने उनकी ममता को दूर फेंक दिया।

हनुमान—क्या कहा ? कर्तव्य, यही तुम्हारा कर्तव्य था ? कायरता को इस प्रकार कर्तव्य की आड़ में रखकर संसार की दृष्टि से बचना चाहते हो ? अपने कलंक के टीके को कर्तव्य की रोली से छिपाते हो ?

लक्ष्मण—हनुमन् अधिक न कहो।

हनुमान—सारे संसार को अज्ञान और मूर्ख समझ कर तुम आज कर्तव्य की इस प्रकार डींग मार रहे हो? तुमने आज यह सिद्ध कर दिया कि संसार में प्रेम की कोई महत्ता नहीं, परन्तु, याद रखो भय्या, जब तक संसार में श्री रामचन्द्र जी की गाथा रहेगी, सीता जी के सतीत्व का आदर्श रहेगा, तब तक तुम्हारे बन्धु-प्रेम की महत्ता के साथ साथ तुम्हारे इस कलंक की झलक सदैव दिखाई देती रहेगी।

लक्ष्मण—अधिक न कहो भय्या, महाराज हमारी प्रतीक्षा में होंगे।

[प्रस्थान]

अंक २—दृश्य ३

[स्थान—नगर की गली]

जीटक—एक ओर से गाते हुए— गीत—

छोड़ा बंगाला देस धनिया तेरे लिए
सुखिया तेरे लिए
लिया जोगिया भेस धनिया तेरे लिए
गोरा गोरा मुखड़ा बड़ी बड़ी आंखें
काले काले लम्बे केस
हाय प्यारा प्यारा तेरा भेस धनिया तेरे लिए
सोने का गडुवा गंगा जल पानी
देख के लागे कलेस हो जियरा में लागे कलेस
धनिया तेरे लिए

सोने की थलियों में भोजन परोसा
खाते कलेजे में ठेस धनिया तेरे लिए

प० मु०— क्यों भाई जीटक, आज तो बड़े सुर से गा रहे हो ?

जीटक—हां भाई गाए जा रहे हैं मन की कसक मिटाने को जी को भुलाने को, और अपना मांस आप ही खाने को।

मु०— पंचायत में तो सारी बिरादरी का दुखड़ा रोए पर अपनी ही नहीं कही, न बरेठन को रोक पाए, न बेटों की सौंह उठा पाए। अब मुँह लटकाए सूख के बरेठन के पीछे कांडे हुए जा रहे हो।

जीटक—जीते रहो भय्या मेरा दुख अगर समझा है तो एक तुम ही समझे हो (कान में हाथ देकर)

और कागज की पुतली करी उड़ उड़ चली अकाश
और धड़ ये मेरा इयां रहा प्रान तुम्हारे पास।
धनिया तेरे लिए।

मुखिया—ये बात है ऐ ऐ, क्या कहा ा ा, मान गए बरेठा, बस, कलेजा निकाल के हाथ पे धर दिया उधर बरेठन का भी वही डौल है।

जीटक—सच कहना प्यारे, तुम्हें मेरी सौंह क्या कहीं देखी थी उसका क्या ढंग डौल है कहीं कोई और घर करने की तो नहीं चल रही है ?

मु०— अरे राम भजो, अजी हँसी हँसी में मैं कुछ कह बैठा तो काट खाने को सी दौड़ी। चौबीस घंटे चुन्नू मुन्नू और तुम्हारी ही कहती रहती है। तुम लोगों की पूंछती फिरती है।

जी०— अजी पूँछने की क्या पूँछ पकड़ूं आती तो है नहीं।

मु०— हम से पूछो तो बात पक्की यह है या तो तुम उसे धौंस धप्पे से ले आओ और या फिर पुचकार के, फुसला के दुलार दिखाके अपना लो।

जी०— अजी धौंस धप्पे की तो चलने से रही। उस दिन थाने में रपट लिखाने गया तो पहले तो दीवान जी बड़े कोतवाल के साथ गप निकले फिर आप तो एक टका मैंने दिखाया टके को देख के ऐसे चौंक जैसे तो फन वाला सांप ही देख लिया हो, बोले राजा राम के राज में घूस नहीं चलती।

मु०— अजी सौ सौ चूहे मार बिलाड़ी गंगा में अस्नान करे!

जी०— पर मैंने तो समझा ठीक ही कहता होगा रुपए सँभाल कर रख लिये तब दीवान बोला चौरस्ते के पान वाले के यहां जो कुछ देना हो रख देना पंजे से कम की तो चाल ही नहीं है—हम तो ले भी लेते पर सौंह ले रखी है कि हम किसी से नहीं लेंगे।

मु०— तो पनवाड़ी से कैसे लेते हैं?

जीटक- सुना है इस से पैसे न लेकर सौदा मँगवा लेते हैं।

मु०— यह तो ठीक वैसे ही हुआ कि सौंह लेते हुए प्रटेस्ट करलो तो सौंह नहीं लगती।

जीटक—सो भइया पनवाड़ी के पास पंजा कहां से रखता? धुलाई के पैसों के आने का ये है कि हाथ के हाथ तो कुछ भी नहीं, देंगे दिलाएँगे यही सब का कहना है।

मु०— अजी बनिए कहते हैं जब चाकर लोग देंगे तब और चाकर कहते हैं महीने पर और दलाल कहते हैं 'किसी मोटे गांठ के पूरे समझ के अधूरे' के फँसने पर।

जीटक—और धोबी मरा बिना मौत के।

मु०— हां तो फिर दीवान जी ने क्या किया?

जीटक—न नौ मन तेल हुआ और न गोरी नाची।

मु०— तो भाबी के लाने का दूसरा उपाव?

जीटक—मना के ले आना! मनाने को मैं लाख मना लूं जब मनने वाला माने।

[नेपथ्य से सुखिया के आने का सुर

मु०— बरेठा, आओ छिप के देख लो—देखो भाबी भी कैसी तुम्हारे बिना छटपटा रही है।

[मुखिया और जीटक छिपते हैं।

सुखिया का दूसरी ओर से गाते हुए प्रवेश—

पिउ पिऊ पपीहा बोले और मेरा मनुवा डोले
मैं रूठी तो पिया भी रूठा, मिटा हमारा प्यार अनूठा
बादल आया मोर जो नाचा जी ठंडे हुए ज्यों ओले
और मनुवा मेरा डोले

बाट जोहती रह गई अब तक, रहूँगी ऐसी आगे कब तक
पन्थ निहारूं पी का एक टक, हाय हाय मैं यों ही गई थक

और चन्दा चमका जो ऊपर
बरसाए आग के गोले और मनुवा०

दू० मु०—कहो बरेठन सुर तो बड़ा अच्छा लगाया है।

सुखिया—चल मुँह जले यहां तू क्या करने आया है ?

दु० मु०—तुमने गाना जो मीठा सुनाया है।

सु०— मर मैंने तो मन का भेद बताया है।

दु० मु०—यही जब बात थी तो उस दिन पंचायत क्यों बिखेर दी।

सु०— बड़े आए पंचायत के पंच बन के सात पान का बीड़ा खाकर, मुँह धोकर पानी में अपना मुँह तो देखा होता। मनई महरारू के झगड़े कहां नहीं होते किस घर में नहीं होते। हम तो बड़े छोटे सभी घरों की गठ्ठी पीटते हैं कई तो कपड़े देते देते और लेते लेते भी लड़ बैठते हैं। लड़ाई न हुई होती तो पूरे महीनों के पेट की लेके राजा राम सीता रानी

को जंगल में भिजवा देते ? ये क्या मैं नहीं जानती कि अब राजा उसी रानी की सुध में सुधबुध खोए चौबीसों घंटे बारह महीने उसी ध्यान में रहते हैं।

मु०— बरेठन वही बात तुम्हारी भी तो है।

सु०— होगी क्यों नहीं धोबी हैं तो क्या हमारे जी नहीं है और जी है तो जी में क्या प्रीत नहीं है ?

मु०— तो चली क्यों नहीं जातीं।

सु०— चली तो मैं जाती जब बुलाने भी कोई आता।

मु०— कहो तो भेजूं बरेठा को।

सु०— तुम हो कौन बरेठा या नाई ? हमारे बीच में पड़ने वाले तुम होने कौन हो ? हमें जब मिलना होगा आप मिल लेंगे--मुँह तोड़ दूंगी जो आगे ऐसी कोई बात भी कही— [आवेश में प्रस्थान

जीटक—मैं कहूँ वह मनाले वह कहती है मैं मना लूं। भगवान, यह गुत्थी सुलझे भी तो कैसे ?

दोनों मु०—बरेठा धीरज धरो, जब मेल होना होगा अपने आप बाट भी निकल आवेगी।

पर्दा

अक २— दृश्य ४

[स्थान सभा— राम वशिष्ठ बैठे हैं]

वशिष्ठ—राम तुम्हारे राज्य में चारों ओर सुख शांति है, प्रजा हर्ष से पुकार कर कह रही है 'जय राघव की' यही

उपयुक्त समय है इस समय तुम अश्वमेध यज्ञ कर डालो।

राम— गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य है।

व०— तो फिर यज्ञ के लिए सामग्री एकत्रित करो।

राम— जो आज्ञा प्रभु की।

व०— परन्तु, राम, इस यज्ञ में तुम्हारी सहधर्मिणी कौन होगी? शास्त्रों के अनुसार यज्ञ बिना स्त्री के नहीं हो सकता।

राम— प्रभु, मैं तो स्त्रीहीन हूँ।

व०— किंतु तुम्हें सपत्नीक होना चाहिए।

राम— तो फिर मेरे लिए यह यज्ञ असम्भव है। मेरे तो पत्नी ही नहीं।

व०— तो क्या, यह यज्ञ न होगा?

राम— नहीं यह यज्ञ न होगा। और उपाय ही क्या है?

व०— रघुवर देवगण रुष्ट होंगे, राज्य में अकाल पड़ जायगा, वर्षा बन्द हो जायगी।

राम— कोई और उपाय नहीं है महाराज?

व०— अकाल और महामारी से प्रजा मरेगी।

राम— देव, मैं क्या करूं? मेरे तो पत्नी ही नहीं है।

व०— राजा के लिये दूसरा विवाह करना शास्त्र विहित है।

राम— क्या कहा देव, आज दूसरा विवाह करना होगा ? महर्षि मैं यह कदापि न करूंगा।

व०— क्यों ?

राम— भगवन, इस दास से यह क्यों पूछ कर इसे स्मृति से दुखी न कीजिए। अब उस पुराने घाव को न खरोंचिए। अब और न सह सकूंगा। सहने की भी कोई सीमा होती है।

व०— स्थिर होओ वत्स, इतने अधीर न होओ।

राम— प्रभु आप मेरी दशा को, मेरी यन्त्रणा को क्या जानें ? आप क्या जानें कि दस वर्षों से रात दिन इस हृदय में कैसी आग जला करती है ? आप गुरु के ऊँचे आसन पर बैठ कर आज्ञा देते हैं, आपको क्या ज्ञात कि उस आज्ञा का पालन कितना कठोर होता है ?

व०— तो क्या मैं यह समझूं कि यज्ञ नहीं होगा ?

राम— नहीं यदि दूसरा विवाह आवश्यक है तो मेरी सम्मति नहीं है।

व०— क्या मैं यह समझूं कि राम आज वशिष्ठ की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं ?

राम— ऐसा ही समझ लीजिए, भगवन् आपकी ही आज्ञा से मैंने सीता—निरपराधिनी सीता—को घर से निकाल दिया और भी कुछ चाहिए तो इस देह से यह हृदय निकाल लीजिए। मुझ से अब नहीं सहा

जाता, मुझे भस्म कर डालिए ऋषिराज,—मेरे लिए स्वर्ग का द्वार बन्द कर दीजिए—परन्तु मैं दूसरा विवाह न करूंगा। अगर मुझे सैकड़ों ऋषि वाक्यों की अवहेलना भी करनी पड़े तो जानकी की पुण्य-स्मृति की रक्षा के लिए मैं ऐसा करने के लिये भी तत्पर हूँ। स्मृति, आगम, निगम, पुराण, वृद्धोपदेश इसके निमित्त मुझे सभी अमान्य होंगे।

व०— राम, यह खेद दूर करो और प्रजा के मंगल के लिये यज्ञ करो।

राम— गुरुदेव यज्ञ आरम्भ कीजिए किंतु मैं सीता की पवित्र स्मृति को नहीं भुला सकता। इस समस्या का निराकरण क्या इस प्रकार न होगा कि सीता की स्वर्णमयी मूर्ति बनवाई जाय वही मेरी सहधर्मिणी हो?

व०— राम, तुम्हारा यह सद्विचार तुम्हारे ही योग्य है। यह सर्वथा शास्त्रविहित होगा। एवमस्तु। अच्छा तो शीघ्र ही मूर्तिकार बुलवा कर यह मूर्ति प्रस्तुत करा ली जावे।

राम— जगत् में वह कलाकार है कहां जो उस अद्वितीय प्रतिमा को प्रकृत स्वरूप दे सके? यह कार्य यदि किसी प्रकार कुछ सम्भव है तो वह केवलमात्र राम द्वारा ही सम्भव हो सकता है। मैं स्वयं वह मूर्ति गढ़ूंगा मेरा अन्तःकक्ष जब तक वह प्रतिमा

न संघटित होले किसी भी आगन्तुक के लिए बन्द रहेगा।

व०— वत्स तुम्हारी सफलता की कामना करता हूँ शुभास्तु ते पन्थानः। [प्रस्थान

पर्दा

अंक २ — दृश्य ५

स्थान दण्डकारण्य का विटप वितान—

[ऊँची शिला पर सीता बैठी गा रही है:—]

गाना—(वसन्त बहार)

क्यों वसन्त फिर फिर आते॥
नव पल्लव से विटप सजाते, फूल खिलाते जाते॥
पी पी पपीहा से सुनवाते, भूले मन को स्मरण दिलाते
भौंरे को मद मत्त फिराते, कोकिल को बुलवाते॥

[लव कुश का प्रवेश

लव— मां, हम अब वहीं बैठ कर तुम्हारा ही गाना सुनेंगे और कहीं न जावेंगे।

कुश— मैं भी अब ऋषि कुमारों से न खेलूंगा मैं उन सब से रूठ कर चला आया हूँ।

सीता—क्यों कुश, ऋषिपुत्रों से तुम क्यों झगड़ पड़े साथियों से भी क्या कभी झगड़ते हैं?

लव— नहीं मां, कुश भय्या नहीं झगड़ा बात सारी यों बिगड़ी कि तापस पुत्रों ने खेल का यज्ञ किया और कुश को यजमान बना कर इससे पिता के नाम-सहित गोत्रयुक्त अपना नाम लेकर संकल्प लेने को कहा।

सीता—तब ?

कुश— तब मैं क्या नाम पिता का लेता पिताजी को क्या कभी हमने देखा भी है या उनका नाम तुमने हमें कभी बताया है ?

लव— अच्छा मां अब आज तो तुम्हें हमारे पिताजी का नाम बताना ही पड़ेगा।

सीता—[स्वगत] हा ! हतभागिनी, तेरे पुत्रों को अपने चक्रवर्ती पिता का नाम तक ज्ञात नहीं ! [प्रकट] दुर पगलो, तुम्हें इस पर रूठने की कौन सी बात रही तुम क्या साधारण तापस हो तुम तो राजपुत्र हो। 'सीतापुत्र' कह कर क्यों न संकल्प कर लिया ?

लव— किंतु यह क्या उन्हें ज्ञात नहीं वे तो पिता का नाम लेने को कहते थे, पिता का नाम क्यों नहीं बताती हो ?

सीता—(पुत्रों को गले से लगा कर) मेरे लाल, समय आएगा जब तुम दोनों को ज्ञात होजाएगा कि तुम्हारे पिता महाबलशाली, युद्ध में प्रवीण, प्रबल

प्रतापी एक बड़े नृपति हैं। इस समय यही जान रक्खो कि तुम्हारी माता सीता राजमहिषी है।

कुश— तुम राजमहिषी और हम राजकुमार! फिर इस आश्रम में हम क्यों पड़े हैं?

सीता— इसमें दुःख ही क्या है राज प्रासाद में यह स्वच्छ सुन्दर जलवायु और कन्द-मूल-फल कहां और फिर वह स्वच्छन्दता और मुक्त स्वतन्त्रता कहां— जाओ लाल खेलो। [लव कुश का प्रस्थान

सीता पुनः गाती है:—

बन बन ढूंढन जाऊँ
मेरे पी मेरे मन में री जान न उनको पाऊँ॥ बन०
एकाकिन मैं माला गूंथूं अपने को पहनाऊँ
मुस्काते उनको मैं देखूँ फूली नहीं समाऊँ॥ बन०॥

न जाने अभी ऐसे ही और कितने दिन बिताने हैं अब तो शिशु किशोर हो उठे—परिचय! हाय इससे तो अपना और उनका सभी का सिर नीचा हो रहा है— [गाते हुए वाल्मीकि का प्रवेश

गाना—

रात जाएगी प्रात आएगा अन्धकार मिट जाएगा॥
तपन खिलेगी शीत मिटेगा जब वह शुभ दिन आएगा।
गीदड़ चमगीदड़ उलूक सब भागेंगे फिर नहीं करें रव
चोर उचक्के छिप जाएँगे रवि प्रकाश जब लाएगा।

[सीता उठ कर प्रणाम करती है

वा०— वीरवत्सा जीववत्सा भव।

सीता—प्रभु रात जाने पर प्रात तो होता ही है परन्तु आपने ही तो उस दिन कहा था कि ध्रुव लोक में नौ मास की रात्रि होती है।

वा०— किंतु पुत्री वहां रात्रि भी दीप्त प्रकाशमयी होती है और जब सूर्य प्रकट होता है तो फिर तीन महीने तक छिपने का नाम भी तो नहीं लेता। यह सब रहने दो मैं इस समय तुम्हें सूचना देने आया हूँ कि मैं कहीं जा रहा हूँ।

सीता—आपका पथ मंगलमय होवे।

वा०— [जाने को प्रस्तुत हो सहसा रुक कर] किंतु पुत्री तुमने यह भी तो न पूछा कि मैं कहां और क्यों जा रहा हूँ?

सीता—इससे मेरा प्रयोजन ही क्या?

वा०— [कुछ सोच कर] तुम से प्रकट करने में क्षति ही क्या है मैं आज राजा राम के निमन्त्रण से अयोध्या को जा रहा हूँ।

सीता—निमन्त्रण काहे का?

वा०— अश्वमेध यज्ञ का।

सीता—अश्वमेध यज्ञ! क्या राघव एकाकी अश्वमेध यज्ञ कर सकते हैं?

वा०— यही ज्ञात करने तो मैं वहां जारहा हूँ—और लव कुश को भी ले जारहा हूँ। इसके निमित्त तुमसे भी अभिमत लेना था इसी हेतु भी तुम्हारे निकट आया हूँ।

सीता—ऋषिराज, जो कुछ भी करेंगे वह मेरा हित ही तो होगा। किंतु राघव से यह सब कुछ न कहें।

वा०— वह तो जैसा अवसर होगा वैसा ही होगा इसके निमित्त मैं वचनबद्ध नहीं होना चाहूँगा।

सीता—जैसी ऋषिराज की इच्छा।

पर्दा

अंक २— दृश्य ६

स्थान—अयोध्या के राज प्रासाद के समीप

[गाते हुए लव, कुश और वाल्मीकि का प्रवेश]

गाना—

महिलाओं में आदर्श, जगत में भारत की सीता
किंतु दुखों से भरी रही उसकी जीवन गीता
सुनो उसकी जीवन गीता

बल रूप गुणों की खान ध्यान में अद्वितीय सी थी
बालकपन में शिव धनुष उठाने की क्षमता की थी

तब हुआ स्वयंबर उस पर
जब तोड़ा राम ने लेकर

फिर भार्गव का अभिमान
धनुष का दान देके बीता
सुनो उसकी जीवन गीता।
तब वन को किया सनाथ राम के साथ
विपिन को धाई विपिन को धाई
रावण के द्वारा लंका को गई लाई
राघव ने कर संहार असुर को जीता
है कहां राम की सीता ?

[हाथ में छेनी हथौड़ा लेकर राम का प्रवेश
(व्याकुल भाव से उसी सुर में)

राम— है कहां राम की सीता ?—अपने कोमल कंठ से व्याकुल कर देने वाले सीता के स्वर के समान स्वर से गाने वाले बालक तुम कौन हो ?

लव-- हम वाल्मीकि ऋषि के शिष्य लव और कुश हैं।

राम— (वाल्मीकि को देख कर) अहो ऋषिराज आप पधारे हैं दाशरथि राम आपको सादर प्रणाम करता है।

वा०--- रघुकुल श्रेष्ठ राम की जय होवे।

राम— आश्रम में सब शांति तो है ? ऋषिराज ने कैसे कष्ट किया ?

वा०— आश्रम में ही नहीं सर्वत्र शांति है—राघव आज इस वेष में कैसे दीख रहे हैं।

राम— [स्वगत] राम के हृदय को छोड़ कर और सर्वत्र शांति है [प्रकट] कुछ नहीं यों ही एक मूर्ति गढ रहा हूँ।

वा०— हैं राघव मूर्ति गढ रहे हैं--मूर्ति किसकी ?

कुश— (नेपथ्य की ओर देख कर) मां ! मां ! [नेपथ्य को झपटता है।

लव— (नेपथ्य की ओर देख कर) मां ! [नेपथ्य को झपटता है।

[राम आश्चर्य चकित

वा०— (नेपथ्य की ओर देख कर) सीता की मूर्ति ! यह किस लिए ?

राम— प्रभु प्रजा के कल्याण के निमित्त गुरुदेव के आदेश से अश्वमेध यज्ञ हो रहा है, इस यज्ञ में मेरी वाम-कक्ष वर्तिनी यही प्रतिमा होगी।

वा०— हैं यह तो अभूत पूर्व अभिनव प्रथा है, यह विधान भी क्या गुरु वसिष्ठ का ही है अथवा इक्ष्वाकुकुल-भूषण का ?

राम— विचार तो यह आपके इस दास का ही है किंतु सम्मति ऋषिराज की भी है।

वा०— राम ! तुम धन्य हो !

राम— मैं धन्य हूँ ! रक्षा करें नाथ, अब और अधिक व्यंग न करें यदि पत्नी परित्यागी राम धन्य है तो संसार में निष्ठुर निर्मम कृपण कौन है ?

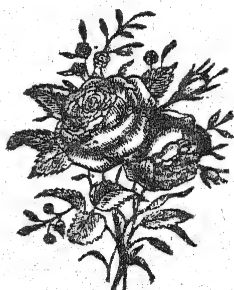
वा०— वत्स यह वृथा खेद दूर करो और अपना कार्य करो मैं अब जाने की आज्ञा चाहता हूँ।

राम— जैसी मुनिराज की इच्छा। पुनः दर्शन देने आइये।

वा०— एवमस्तु—स्वस्त्यस्तु ते।

[यवनिका

द्वितीय अंक समाप्त।



अंक ३— दृश्य १

स्थान दण्डकारण्य—लव खड़ा है।

लव— कुश भय्या ! कुश !

[झपट कर कुश का प्रवेश

कुश— हां भय्या घोड़ा इस नाम का कोई पशु जनपद में होता है ऐसा सुनते तो कभी से रहे पर आज उसे आंखों देख लिया।

लव— हां, मुझे स्मरण है, घोड़ा यह शब्द युद्ध और पशु सम्बन्धी ग्रन्थों में गुरुदेव ने कई बार पढाया था बताओ तो कैसा जान पड़ता है ?

कुश—पीठ पै वृक्ष रही तिहिके अरु ताहि सदा बहुबार हिलावै
दीरघ कंठ सुहावन सो पग मांहिं जुड़े खुर चारि दिखावैं
भूख लगे पर घास चरै अरु आम बराबर लीद गिरावै
कौन विशेष बखान करै चलि बेगि लखौ कहुँ दूर न जावै।

[कहते हुए हाथ खींचता है

लव-- अरे यह तो इधर ही आ पहुँचा—हैं इसके माथे पर लटकी इस पटली पर क्या लिखा है ? देखूं [पढता है] एक वीरा च कौशल्या तस्याः पुत्रो रघूद्वहः
तेन रामेण मुक्तोऽसौ वाजी गृह्णात्विमं बली

कुश— इसका क्या अर्थ ?

लव— एक वीर की मां कौशल्या राघव पुत्र उसी का है
उसी राम का छोड़ा घोड़ा लेवे युद्ध जो सीखा है

कुश— युद्ध करना क्या केवल राम ने ही सीखा है ?

लव— यह तो वीरों के लिए ललकार और स्पष्ट चुनौती है, इस को पकड़ कर बांध डालेंगे और फिर युद्ध करेंगे ।

कुश— घोड़ा तो अच्छा सुन्दर सा है- -एक कान काले रंग का, चमकीली आंखें, गठीला डौल यह तो खेलने को और चढ़ने को बहुत अच्छा रहेगा। लव भय्या तुम ठीक कहते हो इसे नहीं छोड़ेंगे फिर युद्ध ही क्यों न करना पड़े ?

लव— युद्ध की शिक्षा तो माता ने और गुरुदेव ने हमें दे ही रखी है आज शिलाओं और वृक्षों को लक्ष्य न बना कर क्यों न सैनिकों से भिड़ जायें ?

कुश— लो वह कुछ सैनिक आ ही पहुँचे ।

[सैनिक का प्रवेश

सै०— हमारा छोड़ा हुआ घोड़ा क्या तुमने पकड़ा है, तापस बालको ?

लव—कुश हां हमने ही पकड़ा है ।

सै०— किंतु यह घोड़ा तो राजा के अश्वमेध यज्ञ के लिए छोड़ा हुआ घोड़ा है इसे छोड़ दो । इसे पकड़ने का अर्थ है राजा राम और उनकी सेना से युद्ध ।

लव— यह तो हमने उसके माथे की पटली पढ कर स्वयं जान लिया है ।

कुश— हम युद्ध करने को प्रस्तुत खड़े ही हैं।

[धनुष पर बाण चढ़ाता है

सै०— भला तुम दूसरे का घोड़ा कैसे और क्यों लोगे ?

लव— यह आश्रम की भूमि में आया क्यों—तुम्हें ज्ञात नहीं कि गुरुदेव की पूजा के लिए लगाई सब फूलों की क्यारियां इसने चुग डालीं।

सै०— यह अपराध क्षमा करो जो हुआ सो हुआ घोड़ा छोड़ दो, नहीं राजा राम के विद्रोही गिने जाओगे।

लव— हम तो विद्रोही हैं ही इसमें भी तुम्हें अब भी क्या कुछ सन्देह है ?

सै०— राघव की चतुरंगिणी सेना से युद्ध करोगे ?

लव— आवश्यक हुआ तो वह भी कर लूंगा।

सै०— तब तुम्हारी सेना कहां है ?

लव— मेरी सेना यह (कुश की ओर इंगित) और इनकी सेना मैं।

सै०— तुम दोनों अकेले मुझसे तो जीत लेते फिर औरों से जीतते !

कुश— क्षत्रिय समर बात कम और आघात ज्यादा करते हैं।

लव— किंतु यह तो बताओ तुम हो कौन ?

सै०— मैं राघव का एक सैनिक हूँ।

लव— किंतु मैं राजपुत्र हूँ और मैं युद्ध में राजपुत्र से ही भिड़ूंगा।

कुश— तुम अपनी सेना के सेनापति किसी राजपुत्र को बुला लाओ मैं उससे ही लड़ूंगा। फिर यदि उसकी सहायता को सारी सेना ही क्यों न आजाय तब तो फिर किसी से भी लोहा ले लूंगा।

सै०— इस विचित्र दुस्साहस की भी कोई सीमा है? रावण विजयी राम से तुम लड़ोगे दुध मुँहे बच्चे?

लव— रावण विजयी राम! ताड़का घातक स्त्री पर अस्त्र चलाने वाले, बालि बानर पर आड़ से प्रहार करने वाले—यदि अपने को वीर ही समझते हों तो आवें वे ही इस रणस्थल पर।

सै०— किंतु वे तो अयोध्या में हैं यहां उनके भाई लक्ष्मण और उनके पुत्र चन्द्रकेतु इस सेना का परिचालन कर रहे हैं।

कुश— अच्छा तो उन्हीं में से किसी एक बुला लाओ।

सै०— यदि यही तुम्हारा हठ है तो ऐसा ही होवेगा।

[प्रस्थान]

लव— क्यों कुश भय्या, क्षत्रिय का पराक्रम तो युद्ध में ही प्रकट होता है न?

कुश— इस युद्ध के लिए तो मैं अधीर सा हुआ जारहा हूँ।

[सीता का प्रवेश

सीता—पुत्रो।

लव— मां हमने अभी एक घोड़ा पकड़ा है।

कुश— और उसे छुड़ाने जो सैनिक आया था उसे न देकर उसके सेनापति लक्ष्मण को युद्ध के लिए ललकारा है।

सीता—तो क्या तुम युद्ध करोगे ? जानते नहीं यह सेना अयोध्यापति राम की है।

लव— क्यों नहीं जानते पर इससे क्या ?

सीता—तब क्या तुम सचमुच ही लड़ने का संकल्प कर चुके हो ?

लव— यह तो अब मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ मां, कि बिना युद्ध के कदापि घोड़ा न दूंगा।

सीता—तुम्हारे इस असीम साहस से इस क्षत्रिय बली का हृदय जितना व्यग्र और चिंतित है उससे अधिक पुलकित और प्रसन्न है।

कुश— मां, तुम भी अपनी अब सम्मति दे दो। हम अवश्य तुम्हारे आशीर्वाद से विजयी होंगे।

सीता—पुत्रो, तुम वास्तव में क्षत्रिय वीर और राजपुत्र हो तुम मेरे आशीर्वाद से त्रिभुवन में विजयी होओ।

एवमस्तु ॥

पर्दा

अंक ३— दृश्य २

स्थान— दण्डकारण्य

[लक्ष्मण और इनके पुत्र चन्द्रकेतु के पीछे राघव सेना। सूर्य ध्वजा के पीछे गाती हुई:—]

समवेत—गति गीत—

उड़ी ध्वजा, शंख बजा, साज सजा, दौड़ वीर ॥
कड़खा कड़ा, सुर में चढा, रव उठा बड़ा गम्भीर ॥

कसले कमर, होले अमर, दुविधा न कर अरे धीर
बढ बराबर, पैर बढा, पार कर सुदृढ प्राचीर ॥

विचर निर्भय, जय है निश्चय, क्षय भी यदि होवे शरीर
यशः सौरभ ले बहेगा दश दिशाओं में समीर ॥

सै०— यही है वह विद्रोही बालक जो युद्ध चाहता है।

लक्ष्मण— (देख कर मोहित होकर स्वगत) गर्भवती भाबी को आज से ठीक चौदह वर्ष पूर्व मैं यहीं तो छोड़ गया था! यह क्या ये दोनों कुमार अनुहार में भाबी से ही तो मिलते जुलते हैं। यह तो वीर रस तापस वेष धर कर सा अवतीर्ण हुआ ज्ञात होता है। (प्रकट) सुकुमार बालको, यह बालक हठ छोड़ कर घोड़ा हमारा हमें दे दो, तुम्हारे गुरुदेव की जो कुछ भी हानि हुई है उसे हम जैसे भी हो अवश्य पूरी कर देंगे और गुरुदेव से भी क्षमा मांग लेंगे।

लव— किंतु अब तो यह गुरु के हाथ की भी बात नहीं रही।

लक्ष्मण—तो अब वह किस के हाथ की है ?

कुश— लव भय्या के हाथ की और उससे भी अधिक युद्ध में विजय के हाथ की।

लव— हां अब घोड़ा उसका जो युद्ध में विजयी हो।

[धनुष पर तीर चढाता है

लक्ष्मण—[स्वगत] देखता हूँ एक अतीव विचित्र परिस्थिति सम्मुख आ पड़ी है जिसका कभी स्वप्न में भी अनुमान न किया था [प्रकट] तो तुम क्या बिना युद्ध के घोड़ा न दोगे ?

लव— कदापि नहीं।

लक्ष्मण—पुत्र चन्द्रकेतु, इन दोनों हठी बालकों को इनके हठ के लिए अच्छी शिक्षा दे देना अब तुम्हारा काम है।

चन्द्र०—सावधान ! अब तक तुमसे समझाने की बातें थीं तुम न माने अब मेरे बाणों की चोट संभालो। रण में दया नहीं होती।

लव— तुमसे दया की भीख मांग कौन रहा है ? [शर संधान कर बाण छोड़ना, चन्द्रकेतु का मूर्छित होकर गिरना]

कुश— देखा न क्षत्रियों के जीभ से अधिक शर ही काम करते हैं।

लक्ष्मण—चन्द्रकेतु को शिविर में दो सैनिक ले चलें और इसका उपचार होवे। इन बालकों के लिए लक्ष्मण का क्रोध न जाने कहां चला गया, आओ सैनिको इन्हें तो अब शिक्षा देनी ही है।

कुश— भय्या अब ये सब मिल कर हमारे ऊपर प्रहार करेंगे।

लव— तो क्या हुआ ? [धनुष पर बाण चढ़ा कर—

दाढ बड़ी धनु कोटि दुहू लपटी रसना जनु डोर करारी
वारिद नाद समान कढै रव जासु टँकोर भयानक भारी
लीलन हेतु उतारू हँसै यम आनन यन्त्र समान पसारी
भीषम अन्तर जासु जँभाई सचीस सुहाय कमान हमारी।

[नेपथ्य से] सैनिको, कुमार चन्द्रकेतु पुनः स्वस्थ होकर युद्ध भूमि में लौट रहे हैं।

कुश— [लक्ष्मण से] सावधान ! अपने शस्त्र उठाओ मैं प्रहार करता हूँ।

लव— [सेना से] सैनिको, तुम सब मिल कर प्रहार करो मैं एकाकी तुम सब को युद्ध के लिए ललकारता हूँ।

[कुश लक्ष्मण से और सारी सेना लव से भिड़ती है]

[चन्द्रकेतु का प्रवेश

चन्द्र०—अरे यह कौन सी युद्ध नीति है कि तुम अनेक एक से भिड़ पड़े। तापस कुमारो, तुम धन्य हो, तुम्हारे गुरु धन्य हैं और तुम्हारी रण निपुणता धन्य है।

[सारी सेना एक बार रुक कर फिर आगे बढती है]

कुश— भय्या ये फिर भीषण प्रहार करने को आगे बढ रहे हैं, सावधान !

लव— देखो कुश, मैं जृम्भकास्त्र का प्रयोग करता हूँ—
[तूणीर में से छांट कर एक बाण निकाल कर उसे माथे पर लगा कर कुछ मन्त्र पढने का अभिनय, तब बाण को धनुष पर चढा कर ऊपर की ओर आकाश को छोडता है एक धडाका होता है सारी सेना एक दम सो जाती है]

चन्द्र०—अरे यह क्या ? यह भयंकर अँधेरे के साथ बिजली की सी चमक कैसी इससे तो मेरी आंखें चौंधिया गई हैं और मेरी सारी सेना का कोलाहल यह अभी अभी कैसे शांत हो गया ?

लक्ष्मण—यह जृम्भकास्त्र ! इसका प्रयोग यह बालक कहां से जान गया ?

चन्द्र०—सम्भवतः बाल्मीकि मुनि ने सिखाया होगा।

लक्ष्मण—नहीं चन्द्र इसका प्रयोग कृशाश्व मुनि ने बिश्वामित्र जी को अर्पण किया था फिर बडे भय्या राम को अपना शिष्य बना कर श्री विश्वामित्र जी ने ताडका वध से प्रसन्न हो अर्पण किया था।

चन्द्र०—[आंखें झुमा कर और अँगड़ाई लेते हुए] ये काले काले बादल और उनसे उत्पन्न उन्हीं के बीच में पीले पीले चमकीले पीतल के गोल टुकड़े से ये

प्रलय की झंझा से टूटे विन्ध्य के शैलखण्ड से मेरी ओर चले आ रहे हैं मुझे इस रण भूमि में नींद सी क्यों आने लगी ? ये अँगड़ाइयां मुझे तो सताने लगी हैं। [अँगड़ाता है सारी सेना भी बार बार अँगड़ाती है और लक्ष्मण भी अँगड़ाते हैं]

लक्ष्मण—तुम नन्हे बालकों की कुशलता, उपस्थित बुद्धि और रणचातुर्य के सामने मैं हार मानता हूँ। किंतु मुझे दुःख है कि सम्भवतः यह सीतापरित्याग का ही कुफल हो कि आज राघव की सेना पराजित हुई। सब से अधिक दुःख तो इसका है कि यज्ञ इसी कारण रुक गया—तथापि यदि आज ऐसे पराक्रमी वीरों को राजा राम देखते तो कितने प्रसन्न न होते !

लव— हमने भी सुना है कि राजर्षि परम सज्जन हैं। और हम भी यज्ञकार्य में विघ्न डालने वाले तो नहीं थे किंतु तुम्हारे सैनिक के गर्वपूर्ण वचनों से हमारा क्रोध भड़क उठा।

चन्द्र०—राम के प्रताप की बात से ही तुम्हें क्रोध आगया ?

कुश— राम तो अभिमानी न होंगे न आप ही अभिमानी जान पड़ते हैं किंतु ये उनके सेवक राक्षसी वचन कैसे कहते हैं ?

चन्द्र०—राक्षसी वचन कैसे ?

लव— पगलों और घमंडियों के वचन ही राक्षसी वचन हैं क्यों कि इनसे वैर उत्पन्न होता है और लक्ष्मी का नाश होता है—और इसके विपरीत प्रिय और मधुर वचन मनचाही वस्तु दिलाने वाले, दुर्भाग्य दूर करने वाले, कीर्ति बढ़ाने वाले, पाप नाश करने वाले होते हैं ये ही वचन कामधेनु के समान होवे हैं।

चन्द्र०—पर निन्दा क्या ऐसा ही बड़ा अपराध नहीं ? लव, अब तो तुम्हारे शस्त्र का प्रभाव मुझ पर बढ़ चला है— [अँगड़ाई लेता हुआ लेट जाता है।

लव— मैं भी इस शस्त्र के प्रभाव से पीड़ित हो उठा हूँ।

[अँगड़ाई लेते हुए लेटना

पर्दा

अंक ३— दृश्य ३

स्थान—राम की राजसभा

दुर्मुख—राजा राम विजयी होवें [हाथ जोड़ता है]

राम— यज्ञ का घोड़ा और हमारी सेना क्यों नहीं लौटी कोई समाचार मिला क्या ?

दुर्मुख—राघव की सेना का ही संवाद देने यह दास उपस्थित हुआ है। रघुकुल तिलक, लक्ष्मण चन्द्रकेतु सहित सारी सेना दण्डकारण्य में वाल्मीकि के शिष्य कुमार लव के जृम्भकास्त्र से मोहित हो संज्ञा शून्य

पड़ी है। शिविर स्थित एक सैनिक जो जल लेने शस्त्र के प्रभाव क्षेत्र से दूर था, तापस बालकों से यह समाचार पा यहीं सीधा आ पहुँचा है और वही यह संवाद ला पाया है।

राम— जृम्भकास्त्र! इस अस्त्र का प्रयोग तो केवल राम को ही ज्ञात था फिर कोई और ऋषितनय इसे कैसे पा गया? [स्वगत] वाल्मीकी के वे दोनों शिष्य उस दिन मुझे तो सीतापुत्र से ही ज्ञात हो रहे थे कौन जाने वह मेरा अनुमान तथ्य ही तो नहीं हो, यह सूचना श्रवणकटु होते हुए भी आनन्द-दायक सी बोध हो रही है। मेरे शुभ अंग फड़क रहे हैं। भगवन् यह मेरा अनुमान सत्य ही होवे।

दुर्मुख—रघुश्रेष्ठ, अधिक विचार का और अवसर नहीं है इसके लिए शीघ्र उपाय विचारें।

राम— तुरन्त पुष्पक विमान लाने को कहो मैं स्वयं वहां जाकर इसका निराकरण करूंगा।

पर्दा

अंक ३— दृश्य ४

[स्थान दण्डकारण्य]

लव— राघव की अभिमानी सेना अपने नायकों सहित आज धराशायी है, कुश!

कुश— भय्या अब तो घोड़ा हमारा ही न हो गया?

लव— घोड़ा तो यज्ञ का है इसे लेकर हम करेंगे भी क्या पर चन्द्रकेतु हमें शिक्षा देना चाहता था ना ?

[सीता का प्रवेश

लव— मां तुम्हारे आशीर्वाद से हम विजयी हुए हैं।

कुश— मां तुम यदि रणभूमि में लक्ष्मण और चन्द्रकेतु सहित सारी राघव सेना को धराशायी देखतीं तो लव के अद्भुत पराक्रम से अत्यन्त प्रसन्न हो उठतीं।

सीता—लक्ष्मण चन्द्रकेतु धराशायी, हा भगवान्, मेरी ही सन्तान ने अपना गुरुघात, गोत्रघात, और भ्रातृघात करना था! यह मैं क्या सुन रही हूँ हाय

[मूर्छित होकर गिर पड़ती है

लव— हम ने गुरुघात, गोत्रघात, और भ्रातृघात किया ? यह क्या, तो चन्द्रकेतु हमारा भाई और लक्ष्मण गुरुस्थानीय हैं ? कुश तुम पानी तो ले आओ— अरे यह क्या हो बैठा ?

कुश— पानी पानी—मां मां—[झपट कर पानी लाता है

लव— [पानी के छींटे देता हुआ] मां तुम नहीं समझ पाई कि सारी सेना और लक्ष्मण तथा चन्द्रकेतु जृम्भकास्त्र के प्रभाव से धराशायी हैं। तुम यदि चाहो तो लव अभी अपने अस्त्र को लौटा कर उन्हें फिर जैसे का तैसा कर सकता है।

कुश— मां, उठो, उठो, उठो मां तुम्हारे पुत्र लव कुश तुम्हें पुकार रहे हैं।

सीता—[जाग कर] क्या कहा जृम्भकास्त्र के प्रयोग से वे सब तन्द्रित हैं ? तब तो कोई चिंता नहीं।

पर्दा

अंक ३ — दृश्य ५

सुखिया—विरह में गा रही है:—

सुबनुवां यूं ही बीतो जाय सजनुवां अजहूँ ना आय ॥
पिया से कौन कहेगो जाय सतावे विरहा मोको हाय ॥

फूल सूख कांटा हुआ कांटा बन गया तीर
तीर कलेजे में लगा, सजन मिटाओ पीर ॥ सजनुवां०

भरा कटोरा दूध का वा में परी लकीर
केते याको पी गये केते भये फकीर ॥ सजनुवां०

लकड़ी जल कोइला भई कोइला जल भई राख
मैं पापन ऐसी जली कोइला भई न राख ॥ सजनुवां०

बन बन में ढूंढत फिरी मिला न पी का भेद
आओ पी देखो हिया जिसमें लाखों छेद ॥ सजनुवां०

सच मुच उस दिन बड़ी भूल हुई; रिस करके भी घर से निकल कर आना नहीं था। घर में ही रिस करके रह लेती तो क्या बुरा था। सुना है, बरेठा का पीना अब और भी बढ चुका है। उन्होंने पीतल वाली इस्तरी तक को भी रेहन रख दिया है

घर तो चौपट हुआ जारहा है, बुरा हो इस दारू का,
मेरे घर का तो इसी ने सत्यानाश किया।

[दूसरी ओर से जोटक का मद की तुंबी लेकर
गाते हुए आना

गाना—

जोटक— गोरी गोरी बिना कैसे कटे सारी रात
प्यारी गोरी बिना कैसे कटे ०

चावल लकड़ी दाल घी नमक मसाले साथ
गोरी बिन कैसे चले कौन बनावे भात।
अब तो मेरी कैसे बनेगी बात ॥ गोरी०

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुध लेत
फिर पछताए होत का जब चिरियां चुग गई खेत
हाए गोरी प्यारी तुमहो डार हम पात ॥ गोरी०

[स्वगत] हमारी बनी जो बिगड़ गई वह सब बिगड़ी इस दारू से, जा, मेरा सारा सत्यानास तूने ही तो किया, ले मैं भी तेरा सत्यानास करूं। सुखिया ने उस दिन बेटों की सौंह नहीं भरने दी थी। आज मैं बेटों की सौंह लेके कहता हूँ कि आज से इस चुड़ैल का मुँह नहीं देखूंगा। कभी भात-बिरादरी में भी पिऊँ तो गंगा मइया, मेरी कमाई रोटी भी मेरे मुँह न लगने पाए। ले तेरा नास जाए [तूंबी की शराब उलट देता है—सुखिया सुनती है और प्रसन्न मुद्रा दिखाती है] आज से मैं सुखिया को छोड़ और

किसी का मुँह भी न देखूंगा। सांझ होते ही घर पर आ जाऊँगा और सुखिया को ही प्यार करूंगा।

सु०— भगवान, यह तो बरेठा ही आगए और यह मैं सुन क्या रही हूँ, गंगा मइया तुम्हें मैं कलसा भर दूध चढ़ाऊँगी तुमने ऐसी मत इनकी कर दी। रिसने की मेरी भी बान ठीक नहीं है आज से मैं भी बेटों की सौगन्द लेकर कहती हूँ कि मैं भी इस रिसने मरदुवे का नाम न लूंगी, पिटने पर भी हँसूंगी और कलेस न करूंगी।

[जीटक सुन कर अलग कोने पर थिरकता है]

जीटक—[स्वगत] अब इसकी परख भी करनी चाहिए [प्रकट सुखिया के निकट आकर देखे का अदेखा करके] हां मैं अपने दोनों बेटों की सौगन्द खाकर कहता हूँ कि इस चुड़ैल का मुँह न देखूंगा।

सु०— हां अपने दोनों बेटों की सौगन्द लेके कहती हूँ कि इस मरदुवे को कभी घर में न फटकने दूंगी, इसका कभी नाम तक न लूंगी।

जीटक—अच्छा यह बात है? तो फिर अभी अभी कहती थी ना कि रिस नहीं करूंगी कलेस न मचाऊँगी! [रिक्त तूंबी से पीने का अभिनय और ढलना।]

सु०— अच्छा यह बात है! अभी तुम जो कहते थे कि मैं कभी नहीं पिऊँगा और सुखिया को प्यार करूंगा?

जीटक—तो मैंने चुड़ैल तुझे कहा था दारू को ?

सु०— और मैंने मरदुवा तुम्हें कहा था रिसने को और कलस को ?

जीटक—ओहो अब समझा प्यारी !

सु०— ओहो अब समझी प्यारे !

जीटक—अरी अच्छी मिली ले थोड़ा गले तो मिललें।

सु०— अरे अच्छे मिले लो थोड़ा गले तो मिललें।

[गले मिलते हैं और एक दूसरे के कंधे पर सिर रख कर रोने का अभिनय करते हैं; चुन्नू मुन्नू का प्रवेश]

चुन्नू— अरे अब्बा यह क्या [सुखिया से जा लिपटता है]

मुन्नू— बड़े सेठ जी पुरानी धुलाई के पांच सौ रुपए दे गए मैं ने संभाले हैं [जीटक से जा लिपटता है]

सु०— मेरी सोने की हँसली बनेगी, उन रुपयों को तुम कोई भी मत छूना।

[मुखिया और चौधरी का प्रवेश

मुखिया और चौधरी— अ हा हा हा हा हा बहुत अच्छे, ये बात है, बरेठा बरेठन चुन्नू मुन्नू ये मिले, अब जीते रहो भइया दूध बतासे पीते रहो।

जीटक—जीते रहो भइया तुम सब लोग भी जीते रहो।

संवाद गीत—

जीटक—आज बरेठन घरवा आई आजै घरवा आई
आज बरेठा फिरि से मिलिगे आज अनन्द बधाई
सब मिल कर—आज हमारो नीको दिनुवां आज बहार है छाई
जीटक— गठरी लेकर मैं धो लाऊँ
सुखिया— मैं रोटी सिकवाऊँ
जीटक— घाट का राजा मैं हो जाऊँ
सुखिया— (मैं) घर की रानी कहलाऊँ ॥
सब— दारू लड़ना हमने छोड़े यों सौगन्द हैं खाई।
आज हमारो नीको दिनुवां आज बहार है छाई ॥

[सब परस्पर मिल जुल कर नाचते हैं]

पर्दा

अंक ३— दृश्य ६

[स्थान— वाल्मीकी आश्रम]

लव और कुश बातें करते आते हैं।

कुश— आज बड़ा आनन्द होने वाला है, मैं सब सुन आया हूँ।

लव— क्या सुन आए हो ?

कुश— गुरुदेव जो मन्त्रणा कर रहे थे।

लव— वह मन्त्रणा क्या थी ?

कुश— आज मिलन दिवस होगा—राजा राम को राज-परिवार सहित लिवा लाने शिविर से एक तापस बालक भेजा जा चुका है—और भय्या तुम्हें तो ज्ञात हो ही गया होगा कि अयोध्यापति राम हमारे पिता हैं।

लव— और मां सीता को उन्होंने ही घर से निकाल बाहर किया था।

कुश— सबसे विचित्र तो यह है कि मां को इतने पर भी उनके ऊपर कोई रोष नहीं है। हमने जृम्भकास्त्र का प्रयोग कर उस दिन मां को अतीव कष्ट दिया यह अच्छा न किया।

लव— अच्छा न किया ! अच्छा कैसे न किया यही न करते तो ये भेद कैसे खुलते ?

कुश— सो भी ठीक है [कुछ विचार कर] भय्या, यदि तुम्हारी सहमति हो तो एक कौतुक रचा जाय। पिताजी अब आते ही होंगे—यहां पर यह गड्डा कर दें और मुँह लटकाए बैठ जावें।

[कान में कुछ कहता है]

लव— ठीक है यह भी अच्छी सूझ है—गुरुदेव और मां असन्तुष्ट तो अवश्य होंगे पर कर देखने में बुरा भी क्या है ?

कुश— लो वह पिताजी आ ही गए।

[राम लक्ष्मण चन्द्रकेतु का प्रवेश

लव— [लम्बी सांस लेकर] हाय माता तुम गई।

कुश— मां, मां, तुम्हें हमें छोड़ जाते दुःख नहीं हो रहा है? मां देखो तुम्हारे दोनों पुत्र तुम्हें पुकार रहे हैं।

राम— क्यों वत्स, क्या हुआ?

लव— विचारी आजन्म दुःख ही भुगतती रही, कभी स्वामी के साथ तो कभी पुत्रों के साथ।

राम— और आज जबकि मिलन की आशा लेकर मैं ऋषिराज के बुलाने पर आ रहा हूँ तब हाय यह मैं सुन क्या रहा हूँ?

लक्ष्मण—क्यों वत्स, अभी अभी यह क्या हुआ?

कुश— माता ने कहा कि "पति ने वन में छोड़ आने को कहा, देवर यहां इस वन में मेरी वैसी विकट अवस्था में छोड़ गए—और आज ऋषिराज फिर उन्हीं के पास जाने को कहते हैं न जाने अयोध्या-वासी फिर क्या कहें"

लव— इससे क्या यह अच्छा नहीं कि मां पाताल को ही न धँस जाय?

कुश— उसने अपनी मां धरित्री को पुकारा और वह धरा माता सर्पों से लिपटे स्वर्ण सिंहासन पर बैठ कर आई बस यहीं इस स्थान पर धरा फटी वह मां को गोद में लेकर बस यहीं इसी स्थान पर—हाय मां—

लक्ष्मण—(राम से) मुझे बिदा करो भय्या, मैं भी इसी गड्ढे से पाताल प्रवेश करता हूँ और भावी को जैसे भी बनेगा लौटा कर ले आऊँगा।

राम— जोर से सीते ! सीते !

गाना—

लव— त्याग मयी मां गई

तव कीर्ति जगत में अमर रही वह अमर रही ॥

मां गई—

राम— हा सीते [मूर्छित होते हैं]

लक्ष्मण—यह क्या भय्या ?

[सीता को लेकर वाल्मीकि का प्रवेश]

लक्ष्मण- -धन्य हो गुरुदेव प्रणाम; भावी इस निर्लज्ज अपराधी लक्ष्मण का प्रणाम स्वीकार करो—मैंने यह भी तो न विचारा कि वैसी अवस्था में आपकी क्या दशा होगी ? मैं ऐसा निष्ठुर होगया।

सीता—बड़े भाई की आज्ञा का पालन करने से सीता ने तुम्हें सदैव श्लाघ्य और निर्दोष ही माना है। तुम ऐसे ही चिरंजीव बने रहो।

राम— [मूर्छा से जाग कर] समझ में नहीं आता वह स्वप्न था या यह स्वप्न है !

लव— पिताजी हमने यह खेल आपको परखने को ही किया था।

राम— तो तुम्हारी परख में तुम्हारे पिता खरे या खोटे कैसे उतरे ? आओ वत्स मुझसे गले मिललो।

सीता—आओ बेटा लव, आओ बेटा कुश एक बार फिर जी उठी अपनी माता से तुम लोग बार बार लिपट जाओ।

लव— मेरा अहोभाग्य है [लिपटता है]

कुश— अहा यह कैसा शुभ दिवस है [लिपटता है]

सीता—[वाल्मीकि से] महर्षे, मैं आपको प्रणाम करती हूँ।

वा०— तुम चिरकाल तक ऐसी ही सुहागिन बनी रहो, संसार की महिलाओं में सदैव श्रेष्ठ गिनी जाओ।

सीता—अहो, आज आप, श्री लक्ष्मण, चन्द्रकेतु लव, कुश और आर्यपुत्र इन सब को एकत्र देख कर मैं मारे आनन्द के फूली नहीं समा रही हूँ।

[एक सैनिक का प्रवेश

सैनिक—राम की सर्वत्र विजय होवे— लवणासुर का विनाश कर मथुरा के स्वामी श्री शत्रुघ्न आ पहुँचे हैं।

[मस्तक नवा कर जाता है

लक्ष्मण—अहा, एक के पीछे दूसरा कल्याण क्रमशः होता देखने में आरहा है।

राम— इन सब का अनुभव करते हुए भी मुझे विश्वास नहीं होता है अथवा उन्नतियों का स्वभाव ही ऐसा है कि एक अनन्तर एक क्रमशः होती चलती हैं।

वा०— अब महाराज श्री रामचन्द्र जी, कहिए आपकी और कौन सी भलाई की जाय ?

राम— महर्षे ! इन सब बातों से बढ़ कर और कौन सी भलाई शेष रह गई है जिसके लिए मैं प्रार्थना करूं। तथापि कृपया यह आशीर्वाद दीजिए:—

सकलदुरितहरि मंगलकारिणि
मनभावनि सुखकारी
जगतजननि अरु देवसरित सम
सबन लगै यह प्यारी
आतम शब्द मरम जे जानत
प्राचेतस कवि भारी
नाटक रूप प्रकाशित रचना
लखि बुध होंहिं सुखारी ॥

वा०— एवमस्तु— बोलो सियावर रामचन्द्र की जय ॥

(यवनिका)

श्री रामाश्वमेध नाटक

समाप्त ॥